अध्याय 1

आम की वैज्ञानिक खेती

डा० पी० के० राय
मुख्य वैज्ञानिक (फल), राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर

आम भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय फल है। इसे फलों का राजा कहा जाता है। पूरे भारत में इसकी खेती करीब 11 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में की जाती है जिससे लगभग 95 लाख मैट्रिक टन फल प्रति वर्ष प्राप्त होता है। बिहार प्रदेश में आम के बगीचे के अन्तर्गत करीब 1 लाख 45 हजार हैक्टेयर क्षेत्र है जिससे प्रति वर्ष अनुमानत: 14.5 लाख टन फल प्राप्त होता है। व्यवसायिक तौर पर इसकी खेती बड़ी लाभकारी है। अधिक फलन एवं आय के लिए निम्नलिखित वैज्ञानिक प्रबन्धन जरूरी है।

किस्मो का चुनाव

आज भारत में कई किस्में उगायी जाती है। हर किस्म की अपनी अलग विशिष्टता होती है। आम की आदर्श किस्म वह है जिसके फल मध्यम आकार के (1 किलो में 4) हों तथा जिसके गूद्दा की गुणवत्ता सभी को भाये। फलों की गुठली पतली एवं छोटी हो। गूदा रेशारहित, सुवासित मीठा-खट्टा स्वाद के सुरूचिपूर्ण मेल से बना हो। किस्म के वृक्षों में हर साल फलने को प्रवृति हो तथा कीड़े, बिमारियों एवं अन्य व्याधियों के प्रति सहिष्णु है ऐसी आदर्श किस्म की पहचान एवं चयन आवश्यक है। वर्त्तमान में एक भी ऐसी किस्म नहीं हैं जो सभी गुणो से सम्पन्न हो। अत: उपलब्ध किस्मों से ही अपनी पसंद के अनुरूप अधिक उपज देने वाली किस्मों का चुनाव करें। कुछ अच्छी गुणवत्ता वाली किस्मों का चुनाव करें। कुछ अच्छी गुणवत्ता वाली किस्मों के नाम निम्नलिखित है।

मालदह, (लंगड़ा), सिपिया, सुकुल, दशहरी, बम्बई, चौसा, जरदालु, आल्फान्सी, फजली, कृष्णभोग, हिमसागर, गुलाबखास आदि। ऊपर लिखी किस्मों के अतिरिक्त बिहार में कुछ ऐसी किस्में हैं जिनके फल बहुत ही उच्च कोटी के हैं तथा काफी लोकप्रिय है जैसे जरदा, मिठुआ, पहाड़फर सिन्दुरिया आदि। समस्तीपुर जिले के पूसा प्रखण्ड में बथुआ नामक प्रभेद काफी क्षेत्र में उगाया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसके फल काफी देर से पकते है तथा सबसे अन्त में बाजार में आने के कारण अधिक कीमत पर बिकते हैं। इस किस्म की भंडारण क्षमता भी अधिक है।

पिछले दो दशकों में आम की कई संकर किस्मों का प्रादुर्भाव हुआ है। संकर किस्मों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें हर साल फलने की प्रवृति पायी जाती है। अत: हर वर्ष फलन प्राप्त करने के लिए आप इन किस्मों का चयन कर सकते है। ये किस्में है- आम्रपाली, मल्लिका, रत्ना, सिन्धु, महमूद बहार, प्रभाशंकर, सबरी, जवाहर, अरका अरूण, अरका फनीत, अरका अनमोल, मंजीरा, सुन्दर लंगड़ा, अस्फजली आदि।

मिट्टी : यों तो आम सभी प्रकार की मिट्टी में पैदा किया जा सकता है यदि इनमें पानी का निकास अच्छा हो। परन्तु सबसे उपयुक्त मिट्टी गहरी दुमट है जिसमें पानी का निकास अच्छा हो और पी0 एच0 मान-5.5 से 7.5 तक हो। कंकरीली, पथरीली, छिछली तथा अधिक क्षारीय मिट्टी में आम की बागवानी सफल सिद्ध नहीं होती और बहुत कम उपज मिलती है।

बाग का संस्थापन : बाग लगाने के लिए पहले खेत की अच्छी तरह जुताई कर लें एवं पाटा चलाकर

समतल कर लें। अब वृक्ष लगाने की जगह की चिन्हित कर लें। सदैव आम की अच्छी किस्मों के कलमी पौधे लगाये। लगाने की दूरी 10 मी. × 10 मी. रखें। एवं एक कतार में दो पौधों के बीच भी 10 मीटर की दूरी रखें। आम्रपाली नामक किस्म 2.5 मी. × 2.5 मी. की दूरी पर लगायी जा सकती है। चिन्हित जगह पर 90 से.मी. (3 फीट) की लम्बाई, 3 फीट चौड़ाई एवं 3 फीट गहराई वाला एक गढ़ा खोदें। खोदे गये सभी गढ़ों को ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ तथा नीचले हिस्से को आधी मिट्टी दूसरे तरफ रखें। मिट्टी को 15-20 दिनों तक धूप लगने दें। गढ़ा खोदने का कार्य मई के प्रथम पक्ष में करें। भरते समय गढ़े की ऊपरी मिट्टी में 20-25 किलो कम्पोस्ट, 1 किलो खल्ली एवं 50 ग्राम थीमेट मिलाकर इस मिश्रण को गढ़े में डालें। तत्पश्चात यदि गढे में और मिट्टी डालने की आवश्यकता पड़े तो गढ़े से खोदी गयी निचली मिट्टी का इस्तेमाल करें एवं इसी मिट्टी से थाला बनालें। एक दो वर्षा के बाद जब गढ़े में भरी गयी मिट्टी पूर्णत: बैठ जाय पौधों की रोपाई करें। वृक्ष रोपण का कार्य साधारणत: जूलाई अगस्त में किया जाता है जबकि वातावरण में काफी नमी रहती है। फरवरी-मार्च में भी पौधे लगाये जा सकते है परन्तु इनमें उतनी सफलता नहीं मिलती जितनी वर्षा ऋतु में लगाये हुए पौधों में । फरवरी-मार्च में लगाये गये पौधों को अधिक पानी देने की आवश्यकता होती है तथा इन्हें लू से बचाने का भी उचित प्रबन्ध करना आवश्यक होता है। वृक्ष रोपन बादल वाले दिन या संभवत: शाम के समय करना चाहिए जबकि तेज धूप न हो।

पौधा लगाते समय जड़ों के पास मिट्टी के गोले से लिपटी हुई घास या टाट के टुकड़ों या पोलिथीन की थैली को हटा देना चाहिए तथा यह ध्यान देना चहिए कि ऐसा करते समय जड़ों को क्षति न पहुँचे। पौधा लगाते समय ध्यान दे कि पौधे को मिट्टी में उतना ही दबाना है जितना कि वह नर्सरी में रखते समय मिट्टी में दबाया गया था। चश्मा या कलम के जुड़ाव का स्थान भूमि तल से करीब 22 से.मी. (10 ईंच) अवश्य ऊपर रहना चाहिए। पौधा लगाने के बाद मिट्टी को अच्छी तरह दबा देना चाहिए और सिंचाई करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरकों का व्यवहार : लगाने के 1 साल बाद जुलाई-अगस्त में पौधों को निम्न तालिका के अनुसार खाद या उर्वरक देना आरंभ करें। एक वर्ष बाद 10 किलो कम्पोस्ट, आधा किलो खल्ली, 200 ग्राम यूरिया, 50 ग्राम सिंगलसुपर फॉस्फेट एवं 200 ग्राम म्यूरियेट आफॅ पोटाश का इस्तेमाल करें।

तालिका : आम के वृक्षों के लिए खाद एवं उर्वरकों की मात्रा (किलो ग्राम में)

खाद/उर्वरक	प्रथम वर्ष	प्रतिवर्ष बढ़ाई जानेवाली मात्रा	प्रौढ़ वृक्ष के लिए मात्रा
कम्पोस्ट	10.0	6.0	60
अंडी खल्ली	0.5	0.5	5.0
यूरिया	0.2	0.2	2.0
सिंगल सुपर फास्फेट	0.5	0.5	5.0
म्यूरियेट ऑफ पोटास	0.2	0.2	2.0

उर्वरक या खाद का प्रयोग पेड़ के चारों तरफ एक थाला बनाकर करना चाहिए। एक वर्ष के पौधे के लिए ऐसा थाला प्रमुख तने से 30 से.मी. की दूरी छोड़ कर पेड़ के घेरे के दायरे में बनाना चाहिए। मिट्टी को 15 से 20 से.मी. गहराई तक खोदकर उसमें उर्वरक मिलाना चाहिए। खाद मिलाने के बाद सिंचाई करें। प्रति वर्ष तालिका में दी गई मात्रा बढातें जायें और अन्तत: 10 या 11 वर्षो के उपरान्त जब वृक्ष प्रौढ़ हो जाय प्रति वर्ष जून-जुलाई में फल को तोड़ने के उपरान्त 50-60 किलो कम्पोस्ट, 5 किलो खल्ली, 2 किलों यूरिया, 5 किलो सिंगल सुपर फास्फेट और 2 किलो म्यूरिएट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष की हिसाब से वृक्ष को परीधि से थोड़ा भीतर की ओर व्यवहार करें। वृक्षों से अधिक फल प्राप्त करने के लिए खाद एवं उर्वरकों का व्यवहार आवश्यक है।

सिंचाई : वृक्षों को गर्मी में सिंचाई देना आवश्यक होती है। प्रारंभिक अवस्था में थाला बनाकर थालों को नालियों द्वारा जोड़कर सिंचाई करना चाहिए। वृक्ष जब बड़े हो जायें तो पूरे खेत की सिंचाई की जा सकती है। फूल लगने से दो माह पूर्व सिंचाई बन्द कर देना चाहिए। फूलों में जब फल लग जाए और मटर के दाने के बराबर हो तब सिंचाई करना चाहिए। सिंचाई करने से फलों का गिरना कम हो जाता है।

बिमारी एवं कीड़े : आम के वृक्षों में मंजर लगते समय या इसके पूर्व कई प्रकार के कीड़ों और बिमारियों का प्रकोप है। इनसे पौधों एवं फलों को बचाना आवश्यक है। कीड़ों में मधुआ, दहिया, एवं फल मक्खी का प्रकोप आम तौर पर होता है। बिमारियों में कज्जली फफूंदी, उकठा रोग एन्थ्रकनोज और चूर्णो फफूंदी का प्रकोप बहुधा देखने को मिलता है। कीड़ों एवं बिमारियों के प्रकोप से वृक्षों पर फल नहीं टिकते और बहुत कम उपज प्राप्त होती है। कई बार मंजर ही नहीं निकलते।

मधुआ के नियंत्रण हेतु मंजर निकलते समय रोगर या थायोडॉन (35 ई.सी.) दवा का 30 मि.ली. 30 लीटर पानी में मिलाकर प्रति पेड़ की दर से तीन बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल निकलने से पूर्व या मंजर निकलते समय, दूसरा फूल खिलने के पहले एवं तीसरा दूसरे छिड़काव से एक महीने के बाद करें। इस दवा का प्रयोग करना सुरक्षित होगा अगर आस-पास मधुमक्खियों के छत्ते नहीं हो तो रोगर (30 ई. सी.) दवा का 30 मिली लीटर, 30 लीटर पानी में मिला कर प्रति पेड़ की दर से छिड़काव करें। दहिया के नियंत्रण के लिए मेथाईल पाराथिमान 2 प्रतिशत धूल का 5 किलो प्रति वृक्ष की दर से पेड़ के चारों तरफ मिट्टी में दिसम्बर माह के प्रारंभ में मिलावें। जमीन की सतह से 100 से.मी. की ऊँचाई तक पेड़ की धड़ पर 'औस्टिको' का 10 से.मी. चौड़ा लेप लगा दें। दूसरा लेप पहले लेप से 10 से.मी. ऊपर लगा दें। ऐसा करने से पेड़ पर चढ़ने वाले कीड़े सटकर मर जाते हैं। यदि लेप उपलब्ध नहीं हो तो सेलोटेन कागज या अलकाथिन की 20-25 से.मी. चौड़ी पट्टी लपेट दें तथा इसके दानों तरफ गीली मिट्टी से लेप दें ताकि कीट शिशु ऊपर न चढ़ पायें। फल मक्खी के नियंत्रण हेतु मालाथिआन नामक दवा 50 मि.ली. को 50 ली. पानी में घोलकर अप्रैल से मई के बीच 15-20 दिनों के अंतर पर तीन-चार बार छिड़काव करें। बिमारियों से वचाव के लिए धुलनशील गंधक के 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें। उकठा रोग के नियंत्रण हेतु जिनबे 0.2 प्रतिशत या बोर्डो मिश्रण (4:4:50) का प्रयोग करना चाहए। एन्थ्रॉक्नोज से बचाव हेतु साफ या कम्पेनियन नामक दवा 0.2 प्रतिशत घोल इस्तेमाल करें।

फलन एवं उपज : उपज में द्विवार्षिक फलन की समस्या पायी जाती है। एक वर्ष वृक्ष में अधिक फलते है तो अगले वर्ष बहुत कम। यह समस्या अनुवांशिक है। अत: इसका कोई बहुत कारगर उपाय नहीं है। विगत वर्षो में आम को कई संकर किस्में विकसित हुयी है। जो इस समस्या से मुक्त है अत: प्रति वर्ष फल लेने के लिए संकर किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

आम के वृक्ष चार-पांच साल की अवस्था में फलना प्रारम्भ करतें है और 12-15 साल की अवस्था में पूर्ण रूपेण प्रौढ़ हो जाती है अगर इनमें फलन काफी हद तक स्थायी हो जाती है। एक प्रौढ़ वश्क्ष से 1000 से 3000 तक फल प्राप्त होते है कलमी पौधे अच्छी देख-भाल से 60-70 साल तक अच्छी तरह फलतें है।

आम का अनियमित फलन

आज राज्य में फल उत्पादन के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र का आधा भाग केवल इसी फल से परिपूर्ण है। राज्य के हर हिस्से में आम के छोटे-बड़े बाग मिलते हैं तथा इनमें कई किस्मों के आम पाये जाते हैं। यों तो आम के पौधे प्रारंभ में नियमित रूप से प्रति वर्ष फल देते हैं पर 9-10 वर्ष की अवस्था आते-आते उनका फलन अनियमित हो जाता है यानि उनसे प्रति वर्ष फल की प्राप्ति नहीं होती। अब यदि किसी वर्ष आम की भरपूर फसल मिलती है तो उससे अगले वर्ष वृक्ष बिल्कुल नहीं फलते और फिर दो वर्षों के अन्तर से फलने का प्राय: एक निश्चित क्रम बन जाता है। इस क्रम को आम का 'द्विवार्षिय या द्विवार्षिक' फलन की संज्ञा दी जाती है। यह क्रम सभी जातियों (किस्मों) तथा एक ही जाति के सभी वृक्षों में एक-सा नहीं

होता। बाग के रख-रखाव में निरंतर लापरवाही के कारण दो फलन के बीच का यह समय दो वर्ष न होकर कभी-कभी तीन वर्ष भी हो जाया करता है और तब द्विवार्षिक फल की संज्ञा कुछ असंगत-सी जान पड़ती है। पुन: उचित देख-भाल और प्राकृतिक अनुकूलता के कारण यदा-कदा कुछ खास अवधि के लिए यह अंतर मिट भी सकता है और वृक्षों से लगातार सामान्य फल मिल सकते हैं। अत: आम के फलने की क्रिया को द्विवार्षिक के वजाय अनियमित कहा जाना अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

अब प्रश्न उठता है कि आखिर ऐसा होता क्यों है? इस प्रश्न की जटिलता का आभास इसी से मिलता है कि वैज्ञानिकों द्वारा कई वर्षों के सतत् प्रयास के बावजूद अबतक इसका वास्तविक हल नहीं खोजा जा सका है। वैसे अबतक सम्पन्न खोजों के निष्कर्षों के आधार पर इसे समझने में काफी मदद मिली है और यहाँ इन्ही तथ्यों के आधार पर इसकी व्याख्या की गयी है और समाधान के उपाय सुझाये गये हैं।

पौधा लगाने के बाद आम का ग्राफ्ट (कलम) 4-5 वर्षों में फलना शुरू करता है। यदि कोई विशेष प्राकृतिक प्रकोप नहीं हुआ तो अगले 4-5 वर्षों तक वह प्राय: हर वर्ष मंजर देता है और फल भी। यदि किसी वर्ष किसी कारण से बहुत अधिक फल लग जाय या सभी मंजर अल्प विकसित फलों के साथ झड़ जाय तो उसके बाद पौधों के फलने का क्रम बदल जाता है और अनियमितता शुरू हो जाती है। प्रारंभिक अवस्था में नियमित रूप से फल लगने का कारण प्रतिवर्ष संतुलित मात्रा में नये प्ररोह (कोमल पत्तों से युक्त नयी डालियाँ) देने तथा फूल संवहण करने की क्षमता है। बाद के वर्षों में यह संतुलन कायम नहीं रह पाता और समस्या शुरू हो जाती है। ऐसा देखा गया है कि अनियमित फलने वाली किस्में जब फलों से लदी होती है तो नये प्ररोह नहीं फेंकती। फल तोड़ने के बाद भी नये प्ररोह नगन्य मात्रा में आते हैं और जो आते भी हैं उनमें अगले साल फुलने की क्षमता नहीं रहती। पूर्ण रूप से नये प्ररोहों का प्रादुर्भाव अगले साल के वसन्त ऋतु में ही होता है और ये प्ररोह वर्तमान साल में न फूलकर अगले साल में फूलते हैं। अत: बीच में एक और साल का अंतर हो जाता है जो द्विवार्षिक या अनियमित फल का कारण बनता है। बहुत से वैज्ञानिक ऐसा सोचते हैं कि यदि पेड़ में प्ररोह जल्द निकल जाय और नवम्बर तक परिपक्व हो जाये तो इनके फूलने की संभावना अच्छी रहेगी। पर हाल के खोजों से यह ज्ञात हुआ है कि वास्तव में प्ररोह की परिपक्वता इस सिलसिले में कम महत्व रखती है। यथार्थ में यदि पेड़ फुलने की दशा में हों तो प्ररोह कुछ ही महीने के हों या बिल्कुल नये हो या न भी हो तो भी पेड़ में फूल आ सकता है। पेड़ पर लगे फलों का भार प्ररोहों के फूलने की संभावना के लिये उत्तरदायी होता है।

अनुसंधान से ऐसा देखा गया है कि फूल आने के लिए प्ररोहों में नइट्रोजन और कार्बोहाइड्रेट (विशेषकर स्टार्च) की मात्रा अधिक होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त आक्सिन सदृश पदार्थों, निरोधक तत्वों का स्तर ऊँचा और जिब्रैलिन सदृश हारमोन का स्तर नीचा होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं है तो प्ररोह फूलने में असमर्थ होंगे। राज्य की अधिकांश किस्में (जो व्यवसायिक दृष्टि से अति लाभकर और श्रेष्ठ हैं) में यह समस्या अधिक प्रबल है। दक्षिण भारत की कुछ किस्में जैसे- बंगलोरा, नीलम, आलमपुर, बनिशान और बिहार की एक किस्म फजली देश के हर हिस्से में प्रतिवर्ष फल देती है। 'वारहमासी' किस्म से वर्ष में एक बार से अधिक फल मिलते हैं। प्रकृति में इन किस्मों के नियमित फलन से ऐसा विश्वास किया जाता है कि अन्य किस्मों में द्विवार्षिक या अनियमित फलन की प्रवृत्ति उनके अनुवांशिक गुणों के कारण ही है।

मंजरों में नर तथा उभयलिंगी (द्विलिंगी) फूलों का अनुपात भी वृक्षों के फलने की प्रक्रिया को निर्यंत्रित करता है। चूँकि उभयलिंगी फल ही उचित परागण और निषेचन के बाद फल देते हैं जिन किस्मों के मंजरों में इन फूलों की संख्या अधिक होती है- ऐसा देखा गया है कि वे फलने में ज्यादा अनियमित होती है। अधिक उभयलिंगी फूलों के कारण किसी वर्ष तो ऐसी किस्मों के वृक्ष इतना अधिक फल दे जाते हैं कि फलों की तुड़ाई के बाद उनके प्ररोहों की आंतरिक रसायनिक संरचना में असंतुलन पैदा हो जाता है और अगले वर्ष ये प्राय: फूल या फल देने योग्य नहीं रह पाते। 'लंगड़ा' और 'दशहरी' के मंजरों में उभयलिंगी

फूलों की संख्या क्रमशः 69 और 31 प्रतिशत है। ये किस्में फलने में अधिक अनियमित पायी गयी है। दूसरी ओर जिन किस्मों में ऐसे फूलों की संख्या कम पायी जाती है जैसे–नीलम (16 प्रतिशत), आलमपूर वनिशान् (3 प्रतिशत), जहाँगीर (1 प्रतिशत), वे प्रायः प्रतिवर्ष फलती है। इन किस्मों में कम फल लगने की क्रिया ही इनके नियमित फलन के लिये उत्तरदायी है। फिर ऐसा भी देखा गया है कि जिन किस्मों में अग्रवर्त्ती पुष्यक्रम (मंजर) की अधिकता रहती है वे कक्षवर्त्ती पुष्यक्रमों की अधिकता वाली किस्मों की उपेक्षा अधिक अनियमित फल देती है। चूँकि हमारे यहाँ की सभी श्रेष्ठ किस्मों में अग्रवर्त्ती पुष्यक्रमों की संख्या अधिक रहती है वे प्रति वर्ष सामान्य रूप से नहीं फलती। पुनः अनियमित फलन वाली किस्मों के पुष्यक्रम शुद्ध होते हैं अर्थात् उनमें केवल फूल ही रहते हैं–साथ में पत्तियाँ नहीं होती। 'फजली' के पुष्यक्रमों में पत्तियाँ भी रहती है। अतः यह प्रति वर्ष फल देती है। ऐसी पत्तियों की संख्या 'बारहमासी' में बहुत अधिक होती है और यह किस्म साल में दो बार फलती है। सारांश यह कि पुष्पक्रम या मंजर के साथ पत्तियों का होना या न होना भी अगले वर्ष के फलन पर प्रभाव डालता है।

यह प्रायः देखा जाता है कि वैसी किस्में जिनके फल आकार में बड़े एवं गुणवत्ता में उत्तम होते हैं जैसे–मालदह, दशहरी, जरदालू आदि वैसी किस्में जिनके फल छोटे एवं गुणवत्ता में निम्न स्तर के होते हैं जैसे–छोटे फल वाला बीजू आम की अपेक्षा फलने में अधिक अनियमित होते हैं। अनियमित फल की तीव्रता वंशानुगत कारणों एवं वातावरण के मिश्रित परिणाम से बढ़ या घट सकती है। आमतौर पर यदि कोई किस्म एक साल बहुत अच्छी तरह फल देती है तो दूसरे साल वह उसी अनुपात में बहुत कम फल देगी या बिल्कुल फल रहित हो जायेगी। अतः वैसी किस्में जो कम फलती है साधारणतया नियमित होती है। ऐसी किस्मों में नीलम, बनिशान, फजली इत्यादि प्रमुख है। वैसी किस्में जो टूटकर फलती हैं (यानि बहुत अधिक फलती हैं) वे अनियमित होती हैं जैसे–लंगड़ा, दशहरी, बम्बई आदि।

परीक्षणों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि यदि एक डाली पर 30 पत्तियाँ हों तो वे फलने वाले साल में एक फल को शुरू से अंत तक (फल लगने से लेकर उसके पूर्ण विकास तक) अनुपोषित नहीं कर पातीं। एक फल को पूरी तरह विकसित होने के लिए किस्म विशेष के अनुसार 60-90 स्वस्थ पत्तियों की आवश्यकता पड़ती है यदि उनके संपालन (पोषण) हेतु खुराक वर्त्तमान प्रकाश संश्लेषण से आनी हो। चूँकि ऐसा सदैव संभव नहीं होता फल, बढ़ने के लिए, डालियों में संचयित खुराक का बड़ी मात्रा में उपयोग करते हैं। परिणामस्वरूप फलने वाले वर्ष में वृक्ष पूर्णतया शक्तिविहिन हो जाते हैं। अगले वर्ष यही वृक्ष न फलकर शक्ति संचय करते हैं और फलने और न फलने का क्रम चलता रहता है।

ऊपर वर्णित कारणों के अलावे वृक्षों का फलना अन्य कई बातों पर निर्भर करता है जैसे–किस्मों की अपनी विशेषताएँ, फूलने का समय और मौसम की अनुकूलता, पर-परागण की क्षमता, छोटे फलों का गिरना आदि। उत्तर भारत की प्रमुख किस्में जैसे लगड़ा, दशहरी, चौसा आदि स्वअनिषेच्य है। अतः फलने के लिए इनमें पर-परागण अति आवश्यक है। देश में पैदा की जाने वाली अन्य किस्मों के लिए भी पर-परागण का योगदान अति महत्वपूर्ण है। यह क्रिया कीड़ों द्वारा विशेषकर मक्खियों से सम्पन्न होती है। फूलने के समय प्रतिकूल मौसम (वर्षा, बादल युक्त आकाश, तापक्रम का तेजी से बढ़ना-घटना ओला आदि) फूलों को झड़ने में बढ़ावा देता है तथा पर-परागण के लिए उत्तरदायी कीड़ों की गतिविधियों को रोकने में सहायक होता है। जिससे वृक्षों पर फलों की संख्या न्यून हो जाती है। छोटे और विकसित हो रहे फलों का अधिक मात्रा में गिरना भी समस्या उत्पन्न करता है। कीड़ें (हॉपर तथा मिली बग) एवं बीमारियों (चूर्णा फफूँदी एवं एन्थैक्नोज) के प्रकोप से तथा गर्म हवा के झोंकों से फूल तथा फल दोनों गिरते हैं। एक पुष्पक्रम पर बहुत अधिक फल लगते हैं पर पोषक तत्वों के लिए आपसी प्रतियोगिता के कारण बहुत थोड़े ही फल विकसित हो पाते हैं। अतः फलों का गिरना यदि एक नियत सीमा के अन्दर हो तो यह स्वाभाविक है अन्यथा दो फलन के बीच के अन्तर को बढ़ाने में कदाचित यह सहायक सिद्ध हो सकता है।

हर वर्षफलन के अनुकूल सभी परिस्थितियाँ नहीं होती, क्योंकि मिट्टी और विशेषकर जलवायु में परिवर्तन होता रहता है। फिर बहुवर्षी वृक्ष होने के कारण, आम के वृक्ष पर इन सबका तत्कालीन तथा दीर्घकालीन प्रभाव भी पड़ता है। परिणामत: हर वर्ष तथा हर वृक्ष (चाहे वे एक ही किस्म के क्यों न हों) का फलन अलग-अलग ढंग से होता है। चूँकि आम में फलन की जटिल समस्या अनेक प्रभावों का सम्मिलित परिणाम है, इसके निराकरण के लिए किसी एक उपाय का अपनाया जाना एक असफल प्रयास साबित हो सकता है। अत: उत्पादकों को चाहिए कि वे समाधान की दिशा में निम्नलिखित सुझाव अपनाये और वृक्षों से अपेक्षित फल प्राप्त करें :

1. पेड़ों को हमेशा उचित देख-भाल से अच्छी हालत में रखें। उपयुक्त समय पर सिंचाई, खाद, खर-पतवार निकालना, कीड़ों तथा रोगों का नियंत्रण आदि पेड़ों में फलन को सुनिश्चित करता है। इन क्रियाओं से अनियमित फलन पूर्ण रूप से तो नहीं रोका जा सकता पर इसके असर को कम किया जा सकता है। पौधा लगाने से लेकर पहला मंजर निकलने तक खाद-पानी देने में इस बात का ध्यान रखें कि मार्च से मई तक काफी पानी दिया जाय और सितम्बर से दिसम्बर तक एक दम नहीं। खाद केवल जून-जुलाई में दें। मंजर निकलने पर फूल या फल लगते वक्त पानी न देकर अप्रैल-मई में काफी सिंचाई करें। जाड़े में एकदम नहीं। बरसात में अगर वर्षा नहीं हो तो सिंचाई की व्यवस्था करें। शुरू से ही बाग की तीन जुताई अर्थात् पहली वर्षा के साथ जून में, वर्षा के ठीक बाद अक्टूबर में, तथा वसन्त के आरंभ यानि जनवरी में अवश्य करें। इससे बहुत लाभ होता है। मंजर आने के बाद खाद देने का तरीका थोड़ा बदल जाता है। यदि मंजर कम मात्रा में आये हों तो उस वर्ष जून-जुलाई में प्रति प्रौढ़ वृक्ष (20 वर्ष), 1 किलोग्राम यूरिया तथा आधा किलोग्राम म्यूरियेट ऑफ पोटाश का व्यवहार करें। फिर सितम्बर-अक्टूबर में 50-60 किलो कम्पोस्ट, दो किलो सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा आधा किलो म्यूरियेट ऑफ पोटाश डालें। जिस वर्ष मंजर अधिक आये उस वर्ष यूरिया 2.5 किलोग्राम दें और अन्य उर्वरकों की मात्रा पूर्ववत ही रखें।
2. वृक्षों पर लगने वाले कीड़े तथ बीमारियों की रोकथाम के लिए समयोचित उपयुक्त दवाओं का छिड़काव जरूरी है। मधुआ (हॉपर) के लिए फूल आने के पूर्व रोगर (0.1 प्रतिशत) का प्रयोग करें एवं मिली बग की रोकथाम के लिए फूल आने से पहले तने के आसपास अल्काथीन बैंड का प्रयोग करें।
3. पैक्लोब्यूट्रॉजोल नामक रसायन जो बाजार में ''कल्टार'' नाम से मिलता है का प्रयोग आम के फल को नियमित करने में लाभकारी होता है। इसका प्रयोग सितम्बर के अन्त या अक्टूबर महीने में करना चाहिए। इस रसायन की मात्रा वृक्ष की आयु एवं उसके डालियों के फैलाव के मुताबिक तय की जाती है। वृक्ष के फैलाव घेरे के ब्यास को ध्यान में रखते हुए दवा इस्तेमाल करने की अनुशंसा की गयी है। वृक्ष के फैलाव घेरा का ब्यास यदि 5 मीटर होगा तो 15 मि.ली. दवा की आवश्यकता पड़ेगी। यानि प्रति मीटर व्यास के लिए 3 मि.ली. दवा आवश्यक होती है। दवा की सही मात्रा वृक्ष के जड़ क्षेत्र में समानरूप से व्यवहार करना चाहिए। इसके लिए वृक्ष के चारो ओर 8-10" गहरा छेद बना लेना चाहिए और उसी छेद में दवा की वांछित मात्रा डालनी चाहिए। दवा को पानी में घोलकर उसकी मात्रा बढ़ायी जा सकती है। इससे व्यवहार करने में सुविधा रहती है। यह दवा वानस्पतिक वृद्धि रोकता है और वश्क्षों को न फलनेवाले वर्ष में भी फलधारण करने के लिए प्रेरित करता है।
4. ऐसा पाया गया है कि यदि पेड़ की कुछ शाखाओं से फूल आरंभ में ही तोड़ दिया जाय और शेष को यूँ ही छोड़ दिया जाय तो वे शाखायें जिनका फूल तोड़ दिया गया है दूसरे साल फल देने में समर्थ होती हैं। जिन शाखाओं के फूल नहीं तोड़े जाते वे वर्तमान साल में फल देती हैं। इस प्रकार वृक्षों को प्रतिवर्ष

फल देने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, और प्रति वर्ष फल प्राप्त किये जा सकते हैं। पेड़ों की इकाई मानकर इस क्रिया को किया जाना चाहिये। फूलों को आंशिक रूप से झाड़ने के लिए एन.ए.ए. नामक रसायन का छिड़काव वृक्षों की अवस्था एवं फैलाव के मुताबिक 100 से 150 पी.पी.एम. की दर से करनी चाहिए। छिड़काव वृक्षों पर पूरा फूल निकलने के बाद ही करना चाहिए।

5. ऑक्सिन सदृश पदार्थों और तत्वों की मौजूदगी प्ररोहों में फूल विभेदन के लिए आवश्यक पाया गया है। अत: इनका छिड़काव पौधे के लिए लाभदायक होता है। जिस वर्ष फूल न आवें उस वर्ष जी.ए. 300 पी.पी.एम. का छिड़काव अक्टूबर के महीने में करें। यह उपचार नियमित फलन में सहायक होगा।

6. वैसी किस्में जो प्रति वर्ष फल देती है। जैसे- नीलम और बंगलौर आदि को अधिक लोकप्रिय बनाने का प्रयास करना चाहिए। हाल ही में आमों के कुछ संकर जो नियमित फलने वाली किस्मों और श्रेष्ठ अनियमित किस्मों के संकरण से प्राप्त हुए हैं, लगाना चाहिए। इन किस्मों में मल्लिका, आम्रपाली, महमूद वहार, प्रभासंकर, राजेन्द्र आम नं.-1 व नं.-2, जवाहर, रत्ना, सिन्धू, सुवर्नजहाँगीर आदि प्रमुख है। इनमें आमतौर पर प्रतिवर्ष फल देने की क्षमता है।

7. पौधा लगाते समय कई जातियों के पौधे एक ही बाग में लगायें, लेकिन सिलसिलेवार, ताकि परागण समुचित ढंग से हो सके। बाग के ज़ारी तथा पश्चिमी किनारों पर, बाग लगाने के साथ-साथ, जामुन, बीजू आम, शहतूत, कटहल आदि के वृक्ष कुछ कम दूरी पर लगाना न भूलें। इससे तेज हवा का प्रभाव कम हो जाता है।

8. विगत में अनुसंधान द्वारा टहनियों के प्रत्यारोपन से भी फल को नियंत्रित करने में सफलता मिली है। इसके लिए अनियमित फलन वाली किस्मों (जैसे- लंगड़ा, दशहरी, अलफैंजों, तोतापरी आदि) की चुनी हुई डालियों की पत्तियाँ तोड़कर हटा दी जाती हैं तथा इन डालियों पर नियमित रूप से फलने वाली किस्म की पत्ती सहित डालियाँ प्रत्यारोपित कर दी जाती हैं। इस प्रत्यारोपन के फलस्वरूप डालियाँ फलने में समर्थ होती हैं। ऐसा समझा जाता है कि अनियमित फलन वाली किस्मों की पत्तियों की आंतरिक रसायनिक संरचना न फलने वाले वर्ष में कुछ इस प्रकार की होती है कि वे मंजर निकलने की क्रिया को बाधित करती है। अत: जब उन्हें तोड़कर हटा दिया जाता है और उस डाली पर फलने वाली किस्म की एक शाखा प्रतिरोपित कर दी जाती है तो फलन के लिए अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है और मंजरों का प्रादुर्भाव होता है। यहाँ फलने वाली किस्म की पत्तीदार डालियाँ एक उत्प्रेरक का कार्य करती है और न फलने वाली डालियों को फलन के लिए उत्प्रेरित करती हैं। यह उत्प्रेरण या उत्सर्जन फलने वाली किस्म की पत्तियों में वर्त्तमान ऐसे रसायनिक तत्वों के कारण संभव हो पाती है जो फूलने और फलने के लिए आवश्यक समझी जाती है। इन तत्वों की सही पहचान अब भी अनुसंधान का विषय है, परन्तु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिवर्ष फलने वाली किस्मों की पत्तियों में वर्त्तमान इन तत्वों का व्यवसायिक लाभ डालियों के प्रत्यारोपन से फलन को नियंत्रित करने में मिल सकता है। परन्तु प्रत्यारोपन के व्यवहारिक पहलू की ओर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। क्या किसानों के लिए पूरे बगीचे में इस तरह का प्रत्यारोपन स्वयं कर पाना संभव हो पायेगा? क्या ऐसे प्रत्यारोपनों की आवश्यकता हर दूसरे साल (यानि न फलने वाले साल) होगी या एक बार के प्रत्यारोपन से ही वृक्ष फलन की दृष्टि से नियमित हो जायेंगे? क्या हर डालियों का प्रत्यारोपन आवश्यक है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर की तलाश अभी जारी है, निकट भविष्य में कुछ उत्साहजनक परिणाम मिलेंगे।

❑

अध्याय 2

लीची की वैज्ञानिक खेती

डा० पी० के० राय
मुख्य वैज्ञानिक (फल), राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर

बिहार का लीची उत्पादन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। यहाँ देश को सर्वोत्कृष्ट लीची पैदा होती है। भारत में लीची के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का आधा से अधिक भाग इसी राज्य खासकर इसके उत्तरी हिस्से (मुजफ्फरपुर, वैशाली, चम्पारण एवं समस्तीपुर) में स्थित है। आज इस राज्य में करीब 25,000 हेक्टर क्षेत्र में लीची के बाग हैं।

लीची के ताजे फल में 70 प्रतिशत भाग गुद्दा का होता है, जो खाने में स्वादिष्ट एवं मीठा होता है। इसमें चीनी 10-15 प्रतिशत तथा प्रोटीन 1.1 प्रतिशत होती है। यह विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत है।

जलवायु : लीची की फसल बागवानी के लिए आर्द्र जलवायु उपयुक्त है। वर्षा की कमी में भी आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में इसकी खेती की जा सकती है। इसके लिए हर दृष्टिकोण से उत्तरी बिहार उपयुक्त क्षेत्र है।

मिट्टी : लीची विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है, परन्तु इसके लिए दोमट अथवा वलुआही दोमट मिट्टी, जिसका जलस्तर 2 से 3 मीटर नीचे हो, उपयुक्त समझी जाती है। भूमि काफी उपजाए, गहरी एवं उत्तम जल निकास वाली होनी चाहिए। इसके लिए हल्की क्षारीय एवं उदासीन मिट्टी अधिक उपयुक्त समझी जाती है।

लीची की जड़ों में लीची माइकोराईजा नामक फफूँद पाये जाते है। ये फफूँद अपना भोजन पेड़ से प्राप्त करते है एवं बदले में पेड़ों के लिए खाद्य पदार्थ तैयार करते है। साथ-ही-साथ ये कुछ अप्राप्य पोषक तत्वों को भी प्राप्य रूप में परिवर्तित कर देती है जिससे पेड़ों की वृद्धि अच्छी होती है एवं फल अधिक लगते हैं। अत: पौधा लगाते समय फरानी लीची के पौधों की जजड़ के पास की थोड़ी मिट्टी का व्यवहार करना चाहिए।

नया बाग लगाना : अप्रील के शुरू में जमीन का चुनाव कर दो-तीन बार जुताई कर समतल कर दें। लीची का बाग वर्गाकार पद्धति में लगायें अर्थात वृक्षों की कतारो तथा हर कतार में दो वृक्षो के बीज की दूरी बराबर हो। मई के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में 9 या 10 मी. की दूरी पर 90 से.मी. व्यास एवं 90 से.मी. गहराई वाले गढ़े खोदकर खुला छोड़ दें।

जून के द्वितीय सप्ताह में निम्नलिखित खाद गढ़े से निकाली गई मिट्टी में मिलाकर पुन: गढ़े में भर दें।

कम्पोस्ट	:	40 किलोग्राम
चूना (जहाँ चूने की कमी हो)	:	2-3 किलोग्राम
सिंगल सुपर फास्फेट	:	2-3 किलोग्राम
म्यूरियेट ऑफ पोटाश	:	1 किलोग्राम
थीमेट	:	50 ग्राम

किस्में

1. मई के प्रथम पक्ष में पकने वाली-देशी, अर्ली बेदाना।
2. मई के दूसरे पक्ष में पकने वाली-शाही, रोजसेण्टेड एवं पूर्वी।
3. मई के अन्त से जून के प्रथम सप्ताह में पकने वाली-चायना, कसबा, मंदराजी, लेट-बेदाना।

मन पसन्द किस्मों का चुनाव कर पौधें जून-जुलाई में लगायें। 1-2 वर्ष उम्र के गुट्टी द्वारा तैयार किये गये भरपूर जड़ वाले स्वस्थ पौधों का चुनाव करें। बाग में लीची की विभिन्न किस्में जिससे फल शुरू से अन्त तक मिलते रहें। गढ़े की मिट्टी बैठने पर ही पौधे लगायें। पौधे लगाने के बाद जड़ की बगल में मिट्टी अच्छी तरह भर दे एवं शीध्र सिंचाई कर दें। अगर वर्षा नही हो तो हर 3-4 दिनों के अन्तर पर पानी दें।

बगीचे की देखभाल

1. लीची के पौधे कोमल होते हैं, अत: इसे जाड़े में पाले या गर्मी में तेज धूप से बचायें। यदि पाला गिरने की संभावना हो तो बाग की सिंचाई कर दें। छोटे पौधे को गर्मी एवं धूप से बचाने के लिए पूरब दिशा को छोड़कर तीन ओर से सरकंडे, टाट या ताड़ के पत्ते लगा दें।
2. प्रारंभ में नये पौधों की जानवरों से बचायें। इसके लिए बाग के चारों तरफ घेरा लगा दें या गढ़ा खोद दें।
3. वर्षा के पानी का निकास रखें। जाड़े में 15-20 दिनों पर एवं गर्मी में 10 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।
4. बाग के उत्तरी एवं पश्चिमी किनारे पर हवा अवरोधक वृक्ष जैसे शीशम, जामुन, बीजू आम आदि की 2 या 3 कतार लगावें।
5. प्रतिवर्ष वर्षा के शुरू तथा अन्त में और जनवरी में नये बाग की जुताई करें।
6. नये बाग में अन्तर्वर्ती फसल (जैसे विभिन्न सब्जियाँ, दलहनी फसल आदि लगायें।
7. अगर पूरी सड़ी खाद उपलब्ध न हो तो कमी की पूर्ति खल्ली से करें।

खाद एवं उर्वरक : प्राय: लीची 5-6 वर्षो में फूलने लगती है, लेकिन अच्छी फसल 9-10 वर्षो के बाद मिलती है। खाद देने का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु का आरम्भ है। वृक्ष रोपने के बाद तालिका 1 में बतायी गई मात्रा के अनुसार खाद डालें।

ऐसी मिट्टी में जहाँ जस्ते की कमी होती है और पत्तियों का रंग काँसे का सा होने लगता है, वृक्षों पर 4 किलो जिंक सल्फेट तथा 2 किलो बुझे चूने का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

पौधों का आकार : प्रारम्भिक अवस्था में पौधों को अच्छा आकार देने की दृष्टि से शाखाओं को समुचित दूरी पर व्यवस्थित करने हेतु छँटाई करें जिससे पौधों को सूर्य की रोशनी एवं हवा अच्छी तरह मिल सके।

तालिका 1 : लीची के लिए खाद की मात्रा

खाद का नाम	प्रथम वर्ष	प्रतिवर्ष बढ़ाने वाली मात्रा (5-6 वर्ष तक)	प्रौढ़ वश्क्ष के लिए खाद की मात्रा
1. कम्पोस्ट या सड़ी खाद	20 किलों	10 किलों	60 किलो
2. अंडी की खल्ली	1 किलो	½ किलो	5 किलो
3. नीम की खल्ली	½ किलो	½ किलो	3 किलो
4. सिंगल सुपर फास्फेट	½ किलो	¼ किलो	5 किलो
5. म्यूरियेट ऑफ पोटास	100 ग्राम	50 ग्राम	1 किलो
6. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट	-	½ किलो	4 किलो

फूलते हुए वृक्षों मे किये जाने वाले कार्य

1. लीची के बाग की वर्ष में तीन बार (वर्षा के आरम्भ, अन्त तथा जनवरी) जुताई-कोड़ाई करें।
2. जाड़े में सिंचाई न करे। लौंग के आकार के बाराबर फल होने पर सिंचाई शुरू करे और गर्मी मे हर 10-15 दिनों पर आवश्यकतानुसार पानी दें। पौधे में फूल लगते समय कदापि सिंचाई न करें। फल पकने लगे तो सिंचाई बन्द कर दें।
3. जबतक बाग में पूरी छाया न हो तबतक अन्तर्वर्ती फसल उगा सकते हैं। परन्तु फरवरी से मार्च तक सिंचाई वाली फसल न लगायें अन्यथा फूल एवं फल गिर जायेगे।
4. जून के अंत तक पौधों में खाद अवश्य डाल दें क्योंकि जून के बाद खाद देने से फलन कम होने की संभावना रहती है।

कटाई-छँटाई : साधारणत: लीची में किसी प्राकर की कटाई-छँटाई की आवश्यकता नहीं होती है। फल तोड़ने समय लीची के गुच्छे के साथ टहनी का भाग भी तोड़ लिया जाता है। इस तरह इसकी हल्की काँट-छाँट अपने आप हो जाती है। ऐसा करने से अगले साल शाखाओं की वृद्धि ठीक होती है और नयी शीखाओं में फूल-फल भी अच्छे लगते है। घनी, रोग एवं कीटग्रस्त, आपस में रगड़ खाने वाली, सूखी एवं अवांछित डालों की छँटाई करते रहें।

फलों का फटना : लीची की कुछ अगात किस्मों, जैसे शाही, रोजसेण्टेड, पूर्वी आदि में फल पकने के समय फट जाते है जिससे इनका बाजार भाव कम हो जाता है। लीची की सफल खेती में फल फटने की समस्या अत्यन्त घातक है। इसके लिए निम्न उपचार करे : 1. फल लगने के बाद पेड़ों के नजदीक नमी बनायें रखे। 2. जब फल लौंग के आकार के हो जायँ तब नेफ्थेलीन एसीटीक एसीड (NAA) नामक वृद्धि नियामक के 20 पी.पी.एम. घोल का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें। इससे फल कम गिरेगे एवं नहीं फटेंगे।

फलन एवं आय : प्राय: 5-6 वर्ष बाद फूल लगना आरम्भ हो जाता है। फल तैयार हो जाने पर इसे गुच्छे में तोड़ें और अच्छी तरह पैकिंग कर बाजार में भेजें। प्रत्येक वृक्ष से 4000 से 6000 तक फल प्राप्त होते है। लीची में अनियमित फलन की समस्या आम की तरह गंभीर नहीं है। अत: इसकी खेती से हर साल आय मिलती रहती है। लीची के बागों से प्रतिवर्ष औसतन 50,000 से 60,000 रुपये प्रति हेक्टर की आमदनी होती है।

औद्योगिक दृष्टिकोण : लीची के फलों से जैम, शरबत, डिब्बा-बन्दी एवं सुखौता आदि तैयार किया जा सकता है। पर्याप्त लीची फलों का उत्पादन बढ़ाकर उत्तर बिहार में लीची पर आधारित उद्योग खड़े किये जा सकते है एवं इनका निर्यात कर विदेशी मुद्रा का अर्जन किया जा सकता है।

लीची से संबंधित एक महत्वपूर्ण उद्योग मधुमक्खी पालन है। लीची के बाग के मधु का मूल्य साधारण मधु से अधिक होता है। लीची के बाग में मधुमक्खी पालने से फूलों के परागन में काफी सहायता मिलता है जिससे अधिक फल प्राप्त होते हैं।

कीड़ों एवं रोगों की रोकथाम

(क) लीची माइट : इस सूक्ष्म कीट द्वारा रस चूसने पर पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं और उनकी निचली सतह पर लाल मखमली गद्दा बन जाता है। आक्रान्त पत्तियाँ मिलकर गुच्छे बना लेती है।

नियंत्रण

1. ग्रसित टहनियों को कुछ स्वस्थ हिस्सा के साथ जून एवं अगस्त माह में काटकर जला दें।
2. डॉयकोफोल या केलथेन (18.5 ई.सी.) नामक दवा का 30 मी.ली. 10 मी.ली. 10 लीटर पानी में घोलकर प्रति पेड़ की दर से छिड़काव करें। यदि बाग आक्रान्त न हो तो भी पहला छिड़काव मार्च-अप्रील तक अवश्य ही कर दें। आक्रान्त बागों का 15 दिनों के अन्तराल पर 2 या 3 बार छिड़काव करें।

(ख) धड़छेदक : लीची बृक्ष के तना तथा शाखाओं के अन्दर ये कीड़े रहते हैं और स्थान-स्थान पर छेद से इन्हें पहचाना जा सकता है।

नियंत्रण

1. इन छेदों में लम्बा तार डालकर कीड़ो को मार डालें।
2. छेद के अन्दर नूभान या भेपोना नामक दवा का 0.2% घोल की 2-3 बूंदें छेद के अंदर डालें। तत्पश्चात छेद के मुँह को सीमेंट या गीली मिट्टी से बन्द कर दें।

(ग) फल एवं पत्तीछेदक : यह कोमल पत्तियों की दोनों सतहों को बीच से खाता है एवं टहनियों में छेद कर देता है। फलस्वरूप कोमल टहनियाँ मुरझाकर लटक जाती है। पिल्लू निकलते ही फल में छेद कर देता है जिससे कच्चा फल पेड़ से टूटकर नीचे गिर जाता है।

नियंत्रण

1. सुण्डी सहित टहनियों को तोड़कर जला दें।
2. पेड़ में फूल लगने के पहले रोगर 30 प्रतिशत घोल की 1 लीटर या मेटासिस्टॉक्स 25 प्रतिशत घोल की 650 मी.ली. दवा 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(घ) लीचेन : बृक्ष के तनों तथा शाखाओं पर सफेद या हरे रंग का काई जैसा लीचेन लगता है। जुलाई-अगस्त में एक बार कास्टिक सोडा का 1 प्रतिशत (1 लीटर पानी में 10 ग्राम) घोल बनाकर ग्रसित अंगों पर छिड़कें।

(ङ) गमोसिस : विशेषकर बाढ़ के इलाको में शाखाओं की छाल फटकर रस निकालती हैं जो बाद में काली गोद जैसा हो जाता है। ग्रसित स्थान के आसपास की छाल छीलकर हटा दें। कटे स्थान पर ब्लाइटॉक्स का पेस्ट बनाकर लेप दें। बगीचे से पानी का निकास ठीक रखें।

निर्यात से संबंधित कुछ आवश्यक निर्देश

- ❑ हमेशा उन्नत किस्मों की ही खेती के लिए चुनें। उत्तरी बिहार में अधिक उपज देने वाली किस्में है- शाही, चाइना एवं रोजसेन्टेड इत्यादि।
- ❑ बाग लगाने के लिए पौधे-हमेशा किसी विश्वसनीय सरकारी/प्राइवेट नर्सरी से ही प्राप्त करें। हमेशा उन्नत किस्में ही लगायें।
- ❑ बाग लगाने के लिए एक वर्ष या अधिक से अधिक दो वर्ष के पौधे ही उपयुक्त है।
- ❑ प्रारम्भिक अवस्था में यदि वानस्पतिक वृद्धि सामान्य से अधिक हो तो 4-5 वर्ष के बाद नाइट्रोजन वाले उर्वरक का इस्तेमाल बन्द कर दें। इससे वृक्षों के फलन में शीघ्रता आती है। यदि पौधे सामान्य हैं तो नाइट्रोजन वाले उर्वरकों का प्रयोग जारी रखें। इससे उनका संतुलित विकास होगा।
- ❑ अक्टूबर माह से लेकर फूल आने एवं फल लगने तक बाग की सिंचाई नहीं करें। फल लगने के उपरान्त सिंचाई आरंभ करें एवं बगीचे की मिट्टी सदैव नम रखें। एक सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करें।
- ❑ लीची में खाद देने का उचित समय जून-जुलाई है। तोड़ाई के उपरान्त वृक्षों की आयु एवं जमीन की उर्वरता के अनुसार उर्वरकों का प्रयोग करें। 15 जूलाई तक खाद आवश्य डाल दें। कोशिश करें कि खाद तुड़ाई के उपरान्त शीघ्र ही जून के शुरू में डाल दिया जाय।
- ❑ फलों का गिरना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है लेकिन जब फल अधिक गिरने लगें तब प्लानोफिक्स नामक दवा एक मी.ली. प्रति 4½ लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें। मिट्टी में समुचित नमी रहने से फल कम गिरते है।

- फलों का फटना कम करने के लिए बाग की मिट्टी में आवश्यक नमी बनायें रखें। इसके लिए फल बनने के बाद 6-7 दिनों के अन्तराल पर बाग की सिंचाई करें। पछुआ हवा से बचाव के लिए वायु-अवरोधक बृक्षों, यथा शीशम, जामुन, शाल आदि को दक्षिण-पश्चिम दिशा में लगायें। 10 पी0पी0एम0 नैफ्थलीन एसेटिक एसिड या 1 मी.ली. प्लानोफिक्स 4½ लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त जिंक (0.5 प्रतिशत) या बोरॉन (0.1 प्रतिशत) का इस्तेमाल लाभप्रद पाया गया है। सोलबर नामक दवा का 1 ग्राम एक लिटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें।
- लीची के फलों में तोड़ाई के बाद मिठास की वृद्धि नहीं होती है। अत: इसे पूर्णतया परिपक्व हो जाने के बाद ही तोड़े। परिपक्वता का निर्धारण फलों के रंग के साथ-साथ किस्म विशेष की मिठास के आधार पर किया जा सकता है। कुछ फलों को चख कर यह देख लें कि लाली लिए हुये फल स्वाद में मीठे हुये है या नहीं।
- फलों की तोड़ाई ठंढे वातावरण में किया जाना लाभप्रद रहता है, अत: इसका उचित समय 4 बजे सुबह से 8 बजे तक है या फिर रौशनी की उचित व्यवस्था रहने पर रात्रि के अंतिम पहर में भी तोड़ाई की जा सकती है। तोड़ाई करते समय यह धयान रखें कि अनावश्यक रूप से वृक्षों की टहनियाँ नहीं टूटे। फलों के गुच्छे के साथ 40 से.मी. से अधिक लम्बी टहनी तोड़ने से अगले वर्ष के फलने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- फल या गुठली से बचाव के लिए साइपरमेथ्रिन या डेल्टामेथ्रिन (1 मि.ली. प्रति लिटर पानी में) या फेनभेल (1 मि.ली. प्रति 3 लीटर पानी में घोलकर) 15 दिनों के अन्तराल पर दो छिड़काव करें। फलों की तुड़ाई के 12-15 दिन पूर्व कीटनाशी दवाओं का छिड़काव आवश्य बन्द कर दें। अन्यथा दवा का अवशेष फलों को निर्यात के लायक नहीं रहने देगा।
- माइट से नियंत्रण के लिए डाइकोफॉल (या केलथेन) नामक दवा (2 मि. ली. प्रति लिटर पानी में घोलकर) छिड़काव के पूर्व अक्रान्त टहनियों को छांटकर अलग कर दें एवं छांटे गये भाग को जला दें।
- तोड़े गये फलों को धरती पर कदापि न रखें। प्लास्टीक या पोलिथीन की साफ चादर बीछा कर फलों को एकत्र करें या सीधे प्लास्टीक क्रेट या टोकरी में रखकर पैकिंग गृह या स्थान पर भेज दे ताकि वहाँ फलों की ग्रेडिग एवं पैकिंग हो सकें।
- पैकिंग स्थान पर सबसे पहले अनावश्यक पत्तियाँ एवं डंठल आदि को अलग कर दिया जाता है। तब फलों को गुच्छे से अलग किया जाता है। अलग करते समय यह ध्यान दें कि हरेक फल को उपर 2 या 3 मि.मी. डंठल अवश्य लगा रहे। फलों को हाथ से अलग करने के बजाय उन्हें तेज कैंची की मदद से काट कर अलग करना बेहतर होता है।
- ग्रैडिंग के दौरान आकार के अनुसार फलों को छाँटकर अलग-अलग वर्गो में विभक्त किया जाता हैं आमतौर पर छोटे (वजन में 20 ग्राम से कम) और फटे या दागदार फलों को छांट कर अलग कर देते हैं।
- आकार में 25 ग्राम या उससे बड़े फलों को अलग एकत्र कर 'एक्ट्रा लार्ज' साइज के फल की अलग श्रेणी बनायी जा सकती है। वर्गीकृत फल बाजारों में अधिक शीघ्रता से बिकते हैं तथा उनकी कीमत भी अच्छी मिलती है। निर्यात के लिए ग्रेडिंग आवश्यक है।
- ग्रेडिंग के उपरान्त फलों को छिद्रयुक्त प्लास्टिक क्रेट/बास्केट में रखकर सल्फर डाईऑक्साइड गैस से धुम्रित करते है। इसके लिए फलों को एक प्रकोष्ठ में रखकर 500-600 ग्राम सल्फर (गंधक का चूर्ण प्रति टन फल के लिए) जलाया जाता है जिससे फलों को उपचारित करने हेतु वंछित गैस प्राप्त होती है। इस गैस युक्त प्रकोष्ठ में 30-40 मिनट तक फलों को रखा जाता है। उपचार के उपरान्त फल पीले हो जाते है। यह उपचार भंडारण के दौरान फलों को जीवाणुओं से बचाव के लिए आवश्यक है।

- ❑ सल्फर डाईऔक्साइड से धुम्रित करने के उपरान्त फलों को 1 से 2 किलो के डब्बों में पैक किया जाता है। प्लास्टिक के छोटे प्यूनेट्स (250 से 500 ग्राम साइज वाली छोटी डालियाँ या खदोने में) रखकर भी इसे पैक किया जाता है। पैकिंग के उपरान्त पैकेट पर किस्म का नाम, ग्रेड एवं पैकिंग की विधि का उल्लेख आवश्यक है ताकि खरीददार को फलों की गुणवत्ता का पता चल सके।
- ❑ ढुलाई में सहुलियत के लिए छोटे-छोटे डिब्बों को एक जगह रखकर प्लास्टिक की पतली पट्टियों से बांधकर 800 से 1000 किलो तक के बड़े पैकेट बना लिये जाते है।
- ❑ पैकिंग स्थान/गृह का तापक्रम 8 - 10° सेल्सियस रखा जाता है। फलों को चार-पांच घंटा इस तापक्रम पर रखने के उपरान्त ही डब्बे में भरा जाता है। डिब्बों में भरने के बाद भी करीब 1-2 घंटे तक इस तापक्रम पर रखते है ताकि फल के भीतरी भाग (गूदा) का तापक्रम 100° सेल्सियस हो जाय। इसे प्रीकुलिंग की संज्ञा दी जाती है और शीत भंडारण के लिए फलों को तैयार करने के लिए यह एक आवश्यक प्रक्रिया है।
- ❑ प्रीकुलिंग के बाद पैक किये हुये फलों को शीतगृह में भंडारित किया जाता है। शीतगृह के अंदर का तापक्रम 4° सेल्सियस एवं सापेक्षिक आद्रता 90 प्रतिशत से अधिक होती है।
- ❑ निर्यात के लिए रीफर भान या रेफ्रीजेरेटेड ट्रक द्वारा पैकेट को हवाई अड्डा या वंदरगाह पर ले जाया जाता है। रेफ्रीजेरेटेड हवाई या समुद्री जहाज द्वारा उसे नियत देश एवं स्थान पर पहुँचा दिया जाता है।
- ❑ दूसरे देश में पहुँचने पर भी उसे शीतगृह में ही भंडारित किया जाता है जिसका तापक्रम 4° सेल्सियस होता है। यह भंडारण तबतक किया जाता है जबतक कि बिकने के उपरान्त फल उपभोक्ता तक न पहुँच जांय। यह सुनिश्चित किया जाता है कि शीत-भंडार का यह क्रम उपभोक्ता तक पहुँचने के पूर्व टूटने न पाये क्योंकि फलों को 30-40 दिनों तक ताजा एवं आकर्षक बनाये रखने का यही राज है।

❑

बिहार राज्य के अन्तर्गत फलों का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता

क्र.सं		वर्ष 2005-06			वर्ष 2006-07			वर्ष 2007-08			वर्ष 2009-010		
		क्षेत्रफल हेक्टेयर	उत्पादन टन	उत्पादकता टन/हे०	क्षेत्रफल हेक्टेयर	उत्पादन टन	उत्पादकता टन/हे०	क्षेत्रफल हेक्टेयर	उत्पादन टन	उत्पादकता टन/हे०	क्षेत्रफल हेक्टेयर	उत्पादन टन	उत्पादकता टन/हे०
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
1.	आम	140221	1222727	8.72	140786	1306944	9.28	142.21	870.35	6.12	146032	995938	6.81
2.	अमरूद	27709	198951	7.18	27994	247960	8.86	82.67	255.72	8.92	292260	231478	7.92
3.	लीची	28428	200133	7.04	28758	211905	7.37	29.84	223.23	7.48	30602	215132	7.03
4.	नींबू	16844	112349	6.67	17122	121601	7.12	17.57	125.84	7.16	17853	131219	7.35
5.	केला	28042	959317	34.21	29013	1125099	38.78	30.46	1329.36	43.64	31456	1435337	45.63
6.	अन्नास	4227	107958	25.54	4454	121057	27.18	44.64	126.77	27.31	4737	124962	26.38
7.	नारियल	15166	123755	8.16	–	–	–	15.19	7755.54	51.03	15226	780028	51.23
8.	अन्य	30973	266987	8.62	29014	255894	8.80	30.25	278.65	9.21	30717	281693	9.71

स्त्रोत : उद्यान निदेशालय, कृषि विभाग, बिहार, पटना

अध्याय 3

आम एवं लीची के बागों में अन्तर्वर्ती फसलें

डा० मान बिहारी एवं डा० सूर्य नारायण
विषय वस्तु विशेषज्ञ, जिला कृषि कार्यालय, पटना

क्या है अन्तराशस्यन : स्थाई फसल के बीच में पड़ी अनप्रयुक्त भूमि पर अप्रतियोगी, कम समय वाली फसलों को अतिरिक्त लाभ के लिए उगाना अन्तराशस्यन कहते हैं। स्पष्ट है कि अन्तराषस्यन हेतु सभी फसलें उपयुक्त नही होती है।

आम एवं लीची के बागों में अन्तराशस्यन हेतु उपयुक्त फसलें :

1. **मुख्य फसल की उम्र 6 वर्ष तक** - पपीता, करौंदा, केला, अनार, नीबू, फालसा, सब्जिया, पुष्पीय फसलें मसाला फसलें।
2. **7 वर्ष से 12 वर्ष तक के फल वृक्ष** - सब्जियां कन्दीय फसलें, मसाला व पुष्पीय फसलें।
3. **12 वर्ष से अधिक उम्र के फल वृक्ष**- हल्दी, अदरक, जिमीकन्द।

फसल चुनाव में सावधानियां :

1. स्थाई फसल का रोपड़ न करें नही तो मुख्य फसल (आम, लीची) की उपज पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।
2. किसी भी दशा में सूर्य का प्रकाश बाधित न हो नही तो फल वृक्ष असमय पीले पड़कर मरने लगेगें।
3. अन्तरवर्ती फसल अधिक रोगों की वाहक न हो नही तो मृदा में रोग कारक धीरे-धीरे पनप कर फल वृक्षों को रोग ग्रसित करने लगेगें।
4. बाग की किसी भी अवस्था में लतर वाली सब्जी / फसल न उगाएं और न ही लतरों को वृक्षों पर चढ़नें दें।
5. अन्तरवर्ती फसल कम धूप व पानी में भी उत्पादन दे सके।

अन्तराशस्यन की तकनीक :

1. साधारणत: सामान्य दूरी पर लगे फल वृक्षों (आम, लीची 10 × 10 मीटर) को बिरला करें, सूखी टहनियों, डालों, झुकी हुयी, जमीन को छूती हुए, रोग ग्रस्त व वृक्षों में उलझी हुयी शाखाओं को काट कर निकाल दें। इसके बाद में पोषण एवं जल प्रबंधन में सुविधा होगी। हवा एवं प्रकाश अबाध रूप से मिल सकेगा। अन्तरवर्ती फसल निरोगी होगी।
2. मृदा में खरपतवार, झाड़ियां, बहुवर्षिय घासें, अधसड़ी पत्तियां व लकड़ियां आदि को निकाल दें।
3. बाग के चारों ओर मेढ़ की सफाई करें तथा कम से कम 2 फिट ऊंची मेढ बनायें रखें।
4. बाग की मिटटी पलट हल से गहरी जुताई करें यह कार्य वर्ष में दो बार प्रथम गर्मियों में व दूसरी बार वर्षा समाप्त होने के ठीक बाद अवष्य करें।
5. खेत को समतल व समरस करलें।
6. फल वृक्ष के चारों ओर दो फिट व्यास का एक फिट गहरा थाला बनायें।

7. फल वृक्षों के बीच पड़ी भूमि का मापन करें। मान लिजिए यदि आपने वर्गाकार विधि से 10 × 10 मीटर की दूरी पर आम, लीची रोपित की है। अब आपको फल वृक्ष से 2.5 फिट की दूरी से पहली लाइन हल्दी/अदरक की बुआई करनी है तो गणना करने पर पायेंगें कि - फल वृक्षों की कतारों की संख्या = 11, फल वृक्षों की संख्या = 100 तथा ढाई फिट फल वृक्षों के चारों ओर छोड़ने पर वह क्षेत्रफल जिस पर अन्तरवर्ती फसल नहीं लगायी जा सकेगी =1600 वर्ग मीटर, अन्तरवर्ती रोपण हेतु प्राप्त शुद्ध क्षेत्रफल = 10000 - 1600 = 8400 वर्ग मीटर या 84 प्रतिशत क्षेत्रफल पर हल्दी / अदरक की खेती की जा सकेगी। दो फल वृक्षों के बीच अन्तरवर्ती फसल अदरक/हल्दी 30 × 10 सेमी० की दूरी पर रोपनी है। अत: लाइनों की संख्या 30 होगी। एक हेक्टेयर में कुल लाइनों की संख्या 30 × 10 = 300 होगी। एक लाइन में हल्दी के बीजों की संख्या 335 होगी। हल्दी/अदरक के एक बीज / कन्द का वजन 30 ग्राम है। अत: हल्दी के 10150 बीजो का वजन (335 × 30) 3 कुन्तल होगा। अत: एक हेक्टेयर के बाग में हल्दी/अदरक का लगभग 3 कुन्तल बीज लगेगा।
8. अच्छी तरह से तैयार खेत में लगभग 200 कुन्तल सड़ी गोबर की खाद, 3 कुन्तल यूरिया, 2 कुन्तल सिंगल सुपर फास्फेट तथा 2 कुन्तल म्यूरेट आफ पोटास का प्रयोग करें। गोबर की खाद, फासफोरस व पोटास बुआई के ठीक पहले खेत में मिलाएं। जबकि यूरिया का एक तिहाई भाग रोपाई के 35 दिन बाद एक तिहाई 85 दिन बाद तथा एक तिहाई 110 दिन बाद प्रयोग करें।
9. हल्दी/अदरक की उन्नतशील प्रजातियों का चयन करे। हल्दी - राजेन्द्र सोनिया, आरएच 5, आरएच 9/10, आरएच 13/19, एनडीआर 18। एवं अदरक- नाडिया, हिमगिरी, सुरभि, सुरूचि, समस्तीपुर, सुप्रभा।
10. कन्दों का शोधन बाविस्टीन एक ग्राम एक लीटर पानी का घोल बनाकर आधा घंटा कन्दों को डुबोएं फिर निकाल कर छाया में सुखायें।
11. बुआई मेढ बनाकर मई माह में करें, पंक्ति की दूरी 30 सेमी० और पौध के बीच की दूरी 20 सेमी० रखें तथा लगभग 5 सेमी० गहरा बोयें।
12. रोपाई के बाद खेत को पलवार से ढकें इससे जमाव अच्छा होता है।
13. समय-समय पर खरपतवार निकालें व सिंचाई करें।
14. फसल की बढवार के दौरान कम से कम दो बार मिटटी चढायें।
15. रोग एवं कीटों का प्रबंधन करते रहें।
16. लगभग सात माह में फसल तैयार हो जाती है। पौधे पीले पड़कर सूख जायें तभी खोदाई करें।

लाभ : अन्तरवर्ती फसल के तौर पर एक हेक्टेयर में लगभग 250 कुन्तल हरी कन्दें प्राप्त होगी। जिनका थोक मूल्य रु० 2000 से 2500 प्रति कुन्तल है। अत: कुल आय रु० 5.00 से 6.25 लाख प्रति हेक्टेयर होगी। इसकी खेती में कुल लागत रु० 3.00 से 4.00 लाख तक आयेगी। अत: किसान भाइयों को शुद्ध मुनाफा रु० 2.00 से 2.25 लाख प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकेगा।

❑

अध्याय 4

आम एवं लीची के बागों का जीर्णोद्धार

डा० राजेश कुमार
प्रधान वैज्ञानिक, राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

वर्तमान में आम एवं लीची का उत्पादन एवं प्रति वृक्ष उत्पादकता, वृक्षों की क्षमता के अनुरूप नहीं है। जिसके कई कारण हैं। जैसे लीची एवं आम के अन्तर्गत क्षेत्र विस्तार का धीमा दर, उन्नत तकनीकों के अपनत्व एवं कार्यान्वयण के प्रति उत्पादकों की उदासीनता, बागों में उचित प्रबन्धन का अभाव, कीड़े एवं बीमारियों का सामुहिक नियंत्रण नहीं होने के साथ-साथ पुराने बागों के अन्तर्गत सार्थक रूप में बढ़ता क्षेत्र आदि मुख्य हैं।

जीर्णोद्धार क्या है ?

पुराने वृक्षों का जीणोद्धार का तात्पर्य है कि वांछित प्रक्रियाओं को अपनाकर फिर से युवावस्था के गुणों को सृजित करना है। पुराने वृक्षों की वांछित कटाई-छटाई करके नये कल्लों का वृजन करना ताकि उनपर ओजपूर्ण फलन आ सके। जीर्णोद्धार की प्रक्रिया से वैज्ञानिक तरीके से पौधों की डाली, क्षत्रक एवं फलन देने वाली शाखाओं का विकास कराया जाता है और कृंतित वृक्षों की कम से कम दो वर्षों तक गहन देखरेख करके तीसरे वर्ष में फल देने योग्य बना दिया जाता है। ऐसे वृक्षों को जीणोद्धार प्रक्रिया द्वारा पुनः फलत में आकर कम से कम खर्च में गुणवत्तायुक्त पैदावार प्राप्त किया जा सकता है।

जीर्णोद्धार क्यों आवश्यक ?

हमारे राज्य में आम एवं लीची के अन्तर्गत पुराने एवं अनुत्पादक बागों का बढ़ता क्षेत्र सोच का विषय बन गया है। साधारणतया रोपण के बाद लीची के पौधे में फलन 5-6 साल बाद हो जाता है और व्यवसायिक रूप से महत्वपूर्ण अवधि 11-30 साल तक होती है। इस अवधि में भी कटाई-छटाई एवं सधाई के अलावें पोषण, सिंचाई और कीट बीमारी का दक्षतापूर्ण प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है अन्यथा इस अवधि में भी क्षमता के अनुरूप व्यवसायिक स्तर पर गुणवत्तायुक्त उत्पादन नहीं मिलता है साथ ही वृक्षों में वृद्धावस्था की झलक आनेलगती है और आर्थिक रूप से अनुपयोगी होने लगते हैं। इसके अलावा अन्य फल वृक्षों की भांति लीची वृक्ष भी एक निश्चित आयु (35-40 वर्ष) के बाद कम उपज देने लगते हैं। पुराने बागों के फलों का आकार छोटा हो जाना, साथ ही इसके अधिक ऊँचाई पर लगने के कारण तुड़ाई में समस्या होना, सघन क्षेत्र के कारण कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप अधिक होना, फलों का अत्यधिक झरना और गुणवत्ता युक्त उत्पादनमें भारी कमी आदि कई समस्याओं के कारण, लीची एवं आम की बागवानी में उत्पादकों को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है। आमतौर पर 35-40 वर्षों के बाद आम एवं लीची के वृक्ष काफी ऊँचे घने हो जाते हैं और लम्बी शाखायें बढ़कर दूसरे वृक्षों को छूने लगती है जिसके कारण सूर्य का प्रकाश वृक्षों के पर्णीय भागों में पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँच पाता है, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कम हो जाती है, उम्रवार क्षेत्र की अपेक्षा फलन क्षेत्र कम हो जाता है एवं गुणवत्ताहीन उत्पादन की प्रतिशत मात्रा बढ़ जाती है। फलस्वरूप पुरानेबाग के आर्थिक रूप से अनुत्पादक और अनुपयोगी हो जाने के कारण बागवानों को इनको काटकर हटाने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प सामने नजर नहीं आता है।

पुराने बागों को हटाकर फिर से नये बाग लगाना एक दीर्घकालीन एवं खर्चीला विकल्प होगा जबकि

विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि जीर्णोद्धार की उचित वैज्ञानिक पहलुओं को अपनाकर लीची के पुराने अनुत्पादक बागानों को गुणवत्ता युक्त अधिक उत्पादन करने की स्थिति में लाया जा सकता है और आर्थिक एवं परिस्थिति के दृष्टिकोण से जीणोद्धार की अपनायी गयी तकनीक नि:संदेह लीची बागवानों के लिए प्रभावी एवं लाभकारी होगा और उत्पादन वृद्धि की तरह एक कारगर कदम होगा।

लीची के बागों का जीर्णोद्धार

बागों का चुनाव : प्राय: यह देखा गया है कि 10 मी० पौधे से पौधे और 10 मी० कतार से कतार की दूरी पर लगाए गए लीची के बगीचे लगभग 35-40 वर्षों में घने हो जाते हैं और ऐसे पेड़ों के नीचे की पत्तियाँ विहीन लम्बी-लम्बी शाखाएँ व डालियों की अधिकता हो जाती है जिनमें ऊपर की भाग में ही कुछ पत्तियाँ और मंजर लगते हैं तथा ऊपर की ओर वृक्षों का क्षत्रक आपस में मिलकर सघन आच्छादन बना लेते हैं जिससे वृक्ष के क्षत्रक के अन्दर सूर्य का प्रकाश तथा वायु का संचरण में बाधा पड़ती है। परिणामस्वरूप कीड़ों एवं बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है तथा उत्पादन भी कम हो जाता है। ऐसे वृक्षों वाले बागानों का चुनाव करते हैं, बागवानों से मिलकर जीर्णोद्धार की प्रक्रिया एवं तकनीकी पहलुओं को बताते हुए उन्हें बगीचे की जीर्णेद्धार करने के लिए राजी किया जाता है।

वृक्षों की कटाई

जीर्णोद्धार करने के लिए पौधों की चुनी हुई शाखाओं को जमीन से 2-3 मी० की ऊँचाई पर चॉक या सफेद पेन्ट से चिन्हित कर देते हैं। कटाई के लिए शाखाओं को चुनते समय यह ध्यान रखते हैं कि नीचे से चारों दिशाओं की ओर जाती या फैलती शाखाओं का ही चुनाव किया जाए। पौधों के बीच की तथा रोगग्रस्त व आड़ी-तिरछी शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से ही काट दें। शाखाओं को तेज धार वाली आरी या मशीन चलित 'प्रुनिंग सॉ' की सहायता से अगस्त-सितम्बर माह में काटते हैं। कटाई के समय पहले शाखाओं को चिन्हित स्थान पर सावधानी से कटाई करते हैं ताकि कटाई के समय या कटाई के बाद शाखाओं के फटने की संभावना नहीं रहे या छिलके-छाल छुटने की समस्या न उत्पन्न हो। इसके लिए चिन्हित स्थान पर गोई में चारों तरफ हल्की कटाई द्वारा चौरा या घाव बना लेते हैं तत्पश्चात् ऊपर से पूरी शाखा काट लेते हैं। यदि शाखा बहुत लम्बी हो तो ऊपर से दो-तीन भागों में काटकर ही चिन्हित स्थान पर कटाई करते हैं जीर्णोद्धार के लिए बड़े बागों में वृक्षों की कटाई एकान्तर में या आधे भाग में एक वर्ष एवं शेष बचे आधे भाग में दो वर्ष बाद करें तो बागवानों को ज्यादा आर्थिक क्षति नहीं होती है और संतोष भी बना रहता है। कटाई के तुरन्त बाद कटे भाग पर फफूंदनाशक दवा (कॉपर आक्सीक्लोराइड) को अण्डी के तेल या पानी में मिलाकर पेस्ट कर देते हैं। कटाई के बाद पौधों के तनों में धरातल से 5-6 फीट की ऊँचाई तक चूना एवं तृतीया का घोल बनाकर पुताई कर देते हैं।

समय

जीर्णोद्धार उचित समय पर ही वांछित प्रक्रियाओं को अपनाते हुए सावधानीपूर्वक करना चाहिए, नहीं तो काटे गये वृक्षों के सूखनेका भय बढ़ जाता है। विभिन्न परीक्षणों के आधार पर बिहार में जीर्णोद्धार का उचित समय अगस्त माह पाया गया है। जबकि यह प्रक्रिया जुलाई के अंतिम सप्ताह से लेकर सितम्बर माह के मध्य तक की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक

कटाई के बाद पौधों के चारों तरफ थाला बना दें तथा उनमें निकाई-गुड़ाई करके समय-समय पर सिंचाई कर दें। मानसून के शुरूआत में ही प्रत्येक पौधे को 1 किग्रा० यूरिया, 2 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 1 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, 200 जिंक सल्फेट तथा 50 किलोग्राम अच्छी सड़ी गोबर की खाद को अच्छी तरह मिलाकर नाली विधि द्वारा दें। इस विधि में खाद देने के लिए पौधों के उम्र के अनुसार तनों से 1.5 से 2.5 मीटर की दूरी पर 30-40 सेमी० गहरी एवं इतना ही चौड़ा वलय/नाली बनाएँ और इस नाली

के गोलाई में बराबर मात्रा में डालकर एवं अच्छी तरह मिलाकर निकाली गयी मिट्टी से ढककर बाहर की तरफ ऊँची गोलाई बना दें।

विरलीकरण

यह पाया गया है कि शाही प्रभेद के वृक्षों में जीर्णोद्धार हेतु कटाई करने के बाद 30 से 40 दिनों के बाद एवं चाईना प्रभेद के वृक्षों में 50 से 60 दिनों बाद ही सुसुप्त कलियों से नये-नये कल्ले निकलने लगते हैं। इन छाँटे हुए शाखाओं पर निकले सघन कल्लों का वांछित विरलीकरण आवश्यक है। अन्यथा जल व पोषक तत्वों के लिए परस्पर स्पर्धा के कारण स्वस्थ कल्लों का विकास नहीं हो पाता है। साथ ही पर्णीय क्षेत्र झड़नुमा हो जाता है जो फलन के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अत: आवश्यकतानुसार प्रत्येक डाली में ऊपर की ओर कोण बनाती हुई कुछ स्वस्थ कल्लों का विकास नहीं हो पाता है। साथ ही पर्णीय क्षेत्र झाड़नुमा हो जाता है जो फलन के लिए उपयुक्त नहीं होता है। अत: आवश्यकतानुसार प्रत्येक डाली में ऊपर की ओर कोण बनाती हुई कुछ स्वस्थ कल्लों को छोड़कर बाकी सभी नयी कल्लों को सिकेटियर या तेज धार वाली चाकू की सहायता से काटकर हटा दिया जाता है। क्षत्रक निर्माण हेतु वांछित कल्लों के विकास के क्रम में भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि क्षत्रक सघन न हो और उसमें पर्याप्त मात्रा में धूप व रोशनी का आवागमन होता रहे।

सिंचाई

जीर्णोद्धार किये गये वृक्षों की सिंचाई आवश्यक है अन्यथा वृक्ष के सूखने का डर बना रहता है। खाद एवं उर्वरकों के देने के बाद खेत में नमी की अवस्था को बरकरार रखने के लिए सिंचाई तुरन्त करनी चाहिए। आवश्यकतानुसार गर्मियों में 8-10 दिन के अन्तराल पर एवं सर्दियों में 15-16 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। इससे नवसृजित कल्लों के सूखने का भी भय नहीं रहता है एवं वृक्ष के क्षत्रक के विकास एवं बढ़वार में तेजी आती है। अर्न्तवर्ती फसलों की खेती के दौरान भी की गयी सिंचाई में इन वृक्षों को काफी लाभ मिलता है। अप्रैल से जून माह तक गर्मियों में नमी की अवस्था को ज्यादा दिन बरकरार रखने हेतु या सिंचाई का अन्तराल बढ़ाने हेतु मल्चिंग/पलवार की प्रक्रिया अपनाना लाभप्रद है। मल्चिंग हेतु काली पॉलीथीन, सूखे घास, खरपतवार, सुखे पत्ते एवं पुवाल के परत का उपयोग किया जा सकता है।

अर्न्तवर्ती फसलें

जीर्णोद्धार के पश्चात नये बाग की तरह बगीचे की जमीन का खाली भाग में मौसमानुसार वर्ष भर तरह-तरह के अर्न्तफसल लेकर भी खाली जमीन का सदुपयोग के साथ-साथ अतिरिक्त लाभ भी कमाया जा सकता है और बगीचे की मिट्टी का भी सुधार होता है। अर्न्तवर्ती फसलों में मुख्य रूप में गर्मीयों में मूंग, उरद, कुल्थी, मक्का, कद्दुवर्गीय सब्जी तथा रबी के मौसम में तोरिया, मटर, आलू, सरसों, राई आदि फसलों की खेती की जा सकती है।

कीट एवं बीमारी की रोकथाम

यह एक महत्वपूर्ण पहलु है। जैसा कि पहले बताया गया है कि शाखाओं के कटे भाग पर कटाई के तुरन्त बाद ताम्रयुक्त फफूंदनाशी या स्वनिर्मित बोर्डो मिश्रण का लेप लगा देना चाहिए। विरलीकरण के उपरान्त भी बोर्डो मिश्रण का छिड़काव लाभप्रद होता है। इसमें लगने वाले तना/धड़ छेदक कीट की रोकथाम के लिए कीट द्वारा बनाये गये विष्टायुक्त जल्लों को साफ करके, छिद्र/सुराख को खोजकर उसमें लोहे की पतली तीली डालकर कीड़ों को खुरच कर नष्ट करते हैं, फिर डीजल/किरासन तेल या नुभान नामक कीटनाशी दवा को रूई के छोटे टुकड़ें में भिंगोने के उपरान्त छिद्र में ठूसकर बाहर से गीली मिट्टी से सील बन्द कर देते हैं। पत्तियों पर लगने वाले कीड़ों के लिए कोई भी कीटनाशक दवा जैसे कि मोनोसिल/साइपरमेथ्रीन/कर्बारिल (2 मि.ली./लीटर) या अल्फामेथ्रीन (1 मि.ली./लीटर) नामक दवा का छिड़काव 10-12 दिन के अन्तराल पर फरवरी-मार्च माह एवं अगस्त-सितम्बर माह में करना आवश्यक होता है। लीची माइट नामक कीड़े के प्रकोप से पत्तियाँ मोटी, लेदरी होकर सिकुड़ जाती है और पत्तियाँ गुच्छानुमा आकार का बनने लगती है। इसके लिए

आक्रान्त पत्तियों को डाली सहित तोड़कर नष्ट कर देते हैं एवं डाइकोफोल या कर्नल-एस या ओमाइट नामक दवा का (4 मि.ली/लीटर) घोल बनाकर दो-तीन छिड़काव फरवरी-मार्च माह एवं अगस्त-सितम्बर माह में 7-10 दिन के अंतराल पर करते हैं। पत्तियों पर धब्बें पर भी धब्बें एवं बड़े दाग के दिखने पर ताम्रयुक्त फफूदनाशक जैसे कि कापर-ऑक्सीक्लोराइड, ब्लाईटाक्स, ब्लू कॉपर या बोर्डो मिश्रण (2 ग्रा./ली.) का छिड़काव लाभप्रद होता है। कटाई के बाद एवं फिर हरेक वर्ष अगस्त-सितम्बर माह में वृक्षों के तनों पर धरातल से 5-6 फीट की ऊँचाई तक बोर्डो मिश्रण (चूना-तूतीया) के घोल से पुताई करना बहुत ही आवश्यक है।

उपज

जीर्णोद्धार हेतु कृन्तन के दो वर्ष बाद वृक्षों में अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के साथ वांछित क्षत्रक तैयार हो जाता है और नये स्वस्थ कल्लों के साथ पूर्ण क्षत्रक के विकसित होने पर वृक्षों को पुनर्युवन प्राप्त हो जाता है। इसके साथ ही उपयुक्त एवं समसामयिक देखभाल व प्रबंधन करते रहने से इन वृक्षों में दो वर्षों के उपरान्त पुष्पन एवं फलन आ जाते हैं। तीसरे वर्ष औसतन 25-30 किग्रा. प्रति वृक्ष की दर से उपज मिलने लगता है और प्रतिवर्ष उत्पादन में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ जीर्णोद्धार किये गये पुराने एवं अनुत्पादक बागान भी पुनः व्यवसायिक स्तर का उत्पादन देने के कारण आर्थिक रूप से लाभदायक हो जाते हैं। जीर्णोद्धार तकनीक से संबंधित सभी खर्चों का ब्योरा रखने पर यह पाया गया है कि श्रम, खाद एवं उर्वरक, सिंचाई व निराई-गुड़ाई के साथ-साथ कीट एवं रोग प्रबंधन पर तीन वर्षों के आधार पर औसतन 135-140 रुपये प्रति वृक्ष प्रति वर्ष का खर्च आता है। परन्तु अन्तवर्ती फसल का ब्योरा शामिल करने पर यह खर्च बहुत ही कम (85-65 रु०/वृक्ष) हो जाता है। जीर्णोद्धार हेतु वृक्षों की कटाई के बाद निकले लकड़ी को बेचकर भी बागवानों को अच्छी आमदनी हो जाती है।

आम के बागों का जीर्णोद्धार

कटाई-छँटाई

पुराने, घने एवं आर्थिक दृष्टि से अनुपयोगी वृक्षों की सभी अवांछित शाखाओं को पहले चिन्हित कर लेते हैं फिर दिसम्बर माह में चिन्हित शाखाओं को भूमि सतह से लगभग 4 से 5 मीटर की ऊँचाई पर आरी से कटाई करते हैं। कटाई के लिए शक्ति चालित आरी अधिक उपयुक्त है। सूखी, रोग ग्रसित एवं पेड़ों के बीच की घनी शाखाओं को काटकर निकाल देते हैं। पर्णीय क्षेत्र के विकास के लिए पेड़ पर मात्र 3 से 4 कृन्तित शाखायें ही रखते हैं। जीर्णोद्धार हेतु बाग के वृक्षों की कटाई एक साथ अथवा एकान्तर पंक्तियों में करते हैं। कृन्तन करते समय यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि शाखायें अनावश्यक रूप से निचले भाग से फट न जाये। अतः पहले आरी से नीचे की तरफ लगभग 15-20 सेंमी० कटाई कर, फिर टहनी के ऊपरी भाग से कृन्तन करते हैं। कृन्तन के तुरन्त बाद 1 किग्रा० फफूंदी नाशक दवा (कॉपर आक्सीक्लोराइड), 250 ग्राम अण्डी का तेल एवं उचित मात्रा में पानी मिलाकर तैयार किया गया लेप शाखाओं के कटे हुए भाग पर लगाते हैं ताकि सूक्ष्म जीवाणुओं तथा रोगों का संक्रमण न हो सके। ताजे गाय के गोबर का लेप भी प्रभावी पाया गया है। इसके बाद फरवरी माह के मध्य में वृक्षों के तनों के पास थाले एवं सिंचाई की नालियां अवश्य बना देनी चाहिए।

अन्तःफसल

कटाई-छँटाई के बाद कृन्तित वृक्षों के दोनों तरफ काफी खुली जगह हो जाती है, जिसमें अन्तःफसल लेकर अतिरिक्त आमदनी अर्जित की जा सकती है। जायद में तोरई, लौकी, खीरा, लोबिया और रबी के मौसम में फूलगोभी, आलू, पातगोभी, गेंदा, इत्यादि फसलें प्रारम्भिक पाँच वर्ष तक लेना लाभदायक पाया गया है।

इस प्रकार की लकड़ियों की बिक्री व बाग में अन्तः फसलें लेकर अर्जित आमदनी से प्रारम्भिक क्षति पूर्ति की जा सकती है।

पोषण एवं जल प्रबन्धन

कटाई के बाद वृक्षों में 2.5 किग्रा० यूरिया, 3.00 किग्रा० सिंगल सुपर फास्फेट एवं 1.5 किग्रा० म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वृक्ष की दर से थाले में प्रयोग करते हैं। इन खादों में सिंगल सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा और यूरिया की आधी मात्रा फरवरी के अन्त में थालों में डालते हैं। तत्पश्चात् जून माह के अन्त में शेष यूरिया की आधी मात्रा देते हैं। इसके अतिरिक्त जुलाई के प्रथम सप्ताह में 120 किग्रा० सड़ी गोबर की खाद प्रति वृक्ष डालना लाभदायक होता है। उपरोक्त उर्वरकों की मात्रा प्रतिवर्ष दी जाने की संस्तुति की जाती है। उर्वरक डालने के पूर्व थालों की अच्छी प्रकार से निराई-गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए। वृक्षों की सिंचाई मध्य मार्च से मानसून आने तक 10-12 दिन के अन्तराल पर करनी चाहिए ताकि शाखों की वृद्धि अच्छी हो सके और नव-सृजित कल्ले नमी के अभाव में सूखने न पाये। अप्रैल से जून माह तक नमी को संचित रखने के लिए आम या केला की पत्ती, सूखी घास अथवा पुआल थालों में बिछाना (मल्चिंग) चाहिए।

सृजित कल्लों का विरलीकरण

दिसम्बर महीने में हुए कृन्तन के लगभग तीन-चार माह उपरान्त (मार्च-अप्रैल) इन छांटे गए शाखाओं पर बाहुल्यता में नये कल्ले निकलते हैं, जिनका वांछित विरलीकरण आवश्यक है। स्वस्थ कल्लों युक्त खुले पर्णीय क्षेत्र के विकास के लिए शाखाओं के विकास के लिए शाखाओं के बाहरी ओर 8-10 स्वस्थ कल्ले प्रति शाख रखकर शेष अवांछित कल्लों को जून एवं अगस्त में हटा दिया जाता है। इस विरलीकरण के उपरांत फफूंद नाशक दवा कॉपर आक्सीक्लोराइड (3 ग्राम प्रति लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करना आवश्यक है। इससे पत्तियों पर लगने वाले रोगों से बचाव होता है। अक्टूबर माह में 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का पर्णीय छिड़काव प्ररोहों के समुचित विकास हेतु लाभदायक होता है।

❑

फलों को गिरने से कैसे रोकें ?

आम के फूल एवं फल अपने जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में गिरते हैं, जिससे बागवानों को बहुत अधिक आर्थिक हानि होती है। पेड़ में बौरों की तुलना में फल बहुत ही कम लगते हैं। अधिकांश फूल खिलते ही गिर जाते हैं और फल नहीं बन पाते हैं। बहुत से फूल परागण से वंचित रह जाते हैं और वे झड़ जाते हैं। परागण के बाद जो फल बनते हैं, उनमें से भी बहुत से फल गिर जाते हैं। मुख्यत: फलों के गिरने की तीन अवस्थायें हैं। प्रथम-फलों का बहुत ही छोटी अवस्था में गिरना, द्वितीय-पूर्ण फल बनने के बाद गिरना और तृतीय-मई में गिरना। बड़ी अवस्था में फल गिरने से बागवान को अधिक हानि होती है। फलों के गिरने के बहुत से कारण हैं जिनमें भ्रूण तथा बीजाणु का पतन, पोषण की कमी, वातावरण का प्रभाव, पानी की कमी तथा हार्मोन का असंतुलन (जिसमें एबसिसिक अम्ल का अधिक बनना एवं आक्सिन का कम बनना) मुख्य हैं। फलों को गिरने से रोकने के लिए निम्न उपायों को अपनायें।

फल बनने के उपरान्त बगीचे की सिंचाई कर देनी चाहिए। इससे काफी हद तक छोटे फलों का गिरना रूक जाता है। इसके अतिरिक्त फलों को गिरने से रोकने के लिए 20 पी.पी.एम. नेफ्थलीन एसिटिक एसिड या 1 मिली, प्लेनोफिक्स एक गैलन (4.5 लीटर) में घोल कर आम के मटर के दाने की अवस्था में होने पर छिड़काव कर देना चाहिए। इसमें टीपाल स्टीकर मिलाना लाभप्रद होता है।

अध्याय 5

अमरूद की वैज्ञानिक खेती

उदय कुमार
तकनीकी सहायक, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (समस्तीपुर) बिहार

अमरूद एक ऐसा फल वृक्ष है जिसमें विपरीत दशाओं के प्रति काफी हद तक सहिष्णुता पायी जाती है। इसकी बागवानी प्रायः सभी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह दूसरे फल की अपेक्षा अधिक गर्मी और सूखा सहन कर सकता है। अपनी लोकप्रियता और अनुकूलता के कारण इसकी बागवानी पूरे भारत में की जाती है लेकिन अच्छी किस्म के फल और उत्पादन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जबकि बिहार का दूसरा स्थान है।

अमरूद के फल में 1.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 प्रतिशत वसा, 14.5 प्रतिशत कार्बोहाइट्रेट, 0.8% लवण और 299 मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम फल में विटामिन-सी पाया जाता है। ताजे फल के अतिरिक्त इसके फलों से जेली, चीज और अन्य संरक्षित पदार्थ बहुत अच्छे बनते हैं। विभिन्न प्रकार की भूमि एवं जलवायु के प्रति अनुकूलता, कम व्यय, सरल बागवानी और आन्तरिक गुणों के कारण अमरूद की बागवानी की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। यह दिल के मरीज के लिए भी बहुत ही फायदेमन्द है।

भूमि और जलवायु : अमरूद सभी किस्मों की मिट्टी में भलीभाँति पनपता और फलता है लेकिन इसके लिए गहरी बलुई दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त है। अमरूद के फल नये बाढ़ (वृद्धि) पर लगते हैं, इसलिए अधिक नाइट्रोजनयुक्त मिट्टी इसकी बागवानी के लिए अच्छी मानी जाती है।

यह गर्म जलवायु का पौधा है और इसकी बागवानी आद्र एवं शुष्क दोनों प्रकार के क्षेत्रों में आसानी से की जा सकती है लेकिन जून से सितम्बर के बीच 100 सेमी० से अधिक वर्षा होना इसके लिए मुनासिब नहीं है।

किस्में : अमरूद की बहुत-सी किस्में है लेकिन अच्छी उपज और स्वादिष्ट फलों के लिए बिहार राज्य हेतु निम्न किस्मों की सिफारिश की जाती है।

इलाहाबादी सफेद सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सरदार(लखनऊ-49) भी एक अच्छी किस्म है। इसके अतिरिक्त चित्तीदार, हब्सी, बेदाना, हरिझा, लालगूदा तथा केरला नामक स्थानीय किस्में राज्य के कई स्थान में उगायी जाती है।

प्रसारण : बीज द्वारा तैयार पौधों के पैत्रृक गुणों में परिवर्तन हो जाता है। अतः पौधों का प्रसारण वानस्पतिक विधि द्वारा किया जाना चाहिए। बिहार राज्य में गूटी से तैयार पौधे का ही प्रचलन है। गूटी से बने पौधों की वृद्धि अधिक होती है लेकिन पौधे कम मजबूत होते हैं। बरसात के मौसम में लगातार तेज बारिश के साथ आँधी के कारण गूटी से बने पौधे जमीन पर झुक जाते हैं और कभी-कभी गिर भी जाते हैं क्योंकि ऐसे पौधों की जड़ें फाइब्रस (झब्बेदार) होने के कारण भूमि के अन्दर कम जाती है। इसलिए जमीन से गिरफ्त कम हो जाती है लेकिन बडिंग, इनार्चिग तथा विनियर ग्राफ्टिंग द्वारा बने पौधों में यह दिक्कत पेश नहीं आती है। इन विधियों सेबने पौधों में मूलवृन्त का इस्तेमाल होता है जिनकी जड़ें काफी गहराई तक जाती है।

पौधा लगाना : अप्रैल में जमीन की 2-3 जुताई करके उसे समतल कर दें। खरपतवार इत्यादि जड़ समेत उखाड़कर निकाल दें। फिर मई में 6 × 6 मीटर की दूरी पर 60 × 60 × 60 सेमी० आकार के गढे खोदें।

सतह पर की मिट्टी एक ओर जमा करें तथा निचली मिट्टी दूसरी ओर जमा करें। मई के अन्त में या जून के शुरू में दी जाने वाली खाद की आधी मात्रा सतह वाली मिट्टी में मिलाकर पहले भरें। फिर खाद की आधी मात्रा नीचेवाली मिट्टी में मिलाकर भरें। इसके बाद गढ़ों की अच्छी सिंचाई करें जिससे मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाय।

मिट्टी भरते समय प्रति गढ़ा 30 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 1 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट तथा 2 किलोग्राम लकड़ी की राख मिलावें।

चुने हुए अंटा या साटा कलम से बने 1-2 वर्ष के पौधे जून–जुलाई में लगावें। पौधा लगाने का काम संध्या के समय करें। पौधा लगाने के बाद तुरंत पानी दें और अगर बारिश न हो तो हर 3-4 दिनों पर पानी दें।

खाद और उर्वरक : अच्छी पैदावार और स्वादिष्ट फलों के लिए पौधों को नियमित खाद और उर्वरक देना आवश्यक है। खाद और उर्वरक की उचित मात्रा देने के समय और सही तरीके से उसका दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। आयु के अनुसार अमरूद में प्रति पौधा खाद एवं उर्वरकों की मात्रा देने की सिफारिश नीचे दी गई सारणी में दी जा रही है।

अमरूद के लिए खाद एवं उर्वरकों की मात्रा

आयु (वर्ष)	गोबर की खाद (किलोग्राम)	नाइट्रोजन (ग्राम)	फास्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)
1-2	10-15	60	30	30
3	20	120	60	60
4	30	180	90	90
5	40	240	120	120
6	50	300	150	150
7 और अधिक	60	360	180	180

नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की आधी मात्रा अक्टूबर और आधी मात्रा जून में दी जाती है। फास्फोरस और पोटाशधारी उर्वरकों को अक्टूबर में दिया जाना चाहिए। गोबर की खाद की पूरी मात्रा जून में दी जाती है। इन पदार्थों को तने से थोड़ी दूर छोड़कर अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए। इसके बाद सिंचाई करना जरूरी है।

कुछ इलाके में अमरूद के पौधों में जस्ते की कमी पायी जाती है। इसकी कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है और बाढ़ भी रूक जाती है, टहनियाँ सूखने लगती हैं, फूल भी कम लगते हैं और लगे हुए फल कटकर सूख जाते हैं। इस कमी को दूर करने के लिए 0.4-0.5% जिंक सल्फेट का छिड़काव नये कल्ले निकलने के बाद वर्ष में दो बार करें। जिंक के प्रभाव से फलों के गुणों में भी सुधार होगा।

सधाई और कटाई–छँटाई : प्रारम्भ में सधाई पेड़ों को सुन्दर और सुदृढ़ आकार प्रदान करने हेतु की जाती है। प्रारम्भ से ही पौधों के नीचे की शाखाओं की छँटनी करते रहना चाहिए और जमीन की सतह से 60 सेमी० ऊपर की 3-4 शाखाएँ रखकर बाकी शाखाओं सहित ऊपरी हिस्सा काटकर निकाल दें। इन्हीं चुनी गई शाखाओं को मुख्य तने का रूप दिया जाता है।

प्रत्येक वर्ष फलदार पौधे की सूखी रोगग्रस्त और अत्यन्त सघन शाखाएँ फलों की तोड़ाई के बाद निकालते रहना चाहिए।

सिंचाई : पौधों को सिंचाई उनकी वृद्धि एवं उपज के लिए बहुत जरूरी है। सिंचाई मिट्टी एवं पौधों की आयु पर निर्भर करती है। छोट अर्थात् नये लगे पौधों के लिए नवम्बर से फरवरी तक एक माह मे अन्त पर और मार्च से जून तक 15 दिनों के अन्तर पर सिंचाई दी जानी चाहिए। पूर्ण विकसित पौधों की अक्टूबर–जनवरी तक 2-3 सिंचाई काफी है। फल लगने वाले पौधों में फूल के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए। हर सिंचाई बाद पौधे के पास के खरपतवार की गुड़ाई करके निकालते रहना चाहिए। गुड़ाई हल्की

ही करें क्योंकि अमरूद की जड़ें उपरी सतह पर ही होती है।

अन्तर्वर्ती फसल : खाद और सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो तो पपीता, केला तथा सब्जी लगावें। यदि यह व्यवस्था पूरी न हो तो दलहन फसलें लगावें। दलहन फसलों में थोड़ा सिंगल सुपर फास्फेट (25 किलोग्राम) प्रति हेक्टर) देने से अधिक लाभ होगा।

अच्छे और अधिक फल लेना : अमरूद यहाँ वर्ष में दो बार फल देता है। मुख्यत: मार्च-अप्रैल और जुलाई-अगस्त के फूलों में फल लगते हैं। क्रमश: बरसात और ठण्ढे मौसम में तैयार होते हैं। बरसात की अपेक्षा सर्दियों के फल स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। बरसात के फलों की अपेक्षा जाड़े के मौसम के फलों में कीड़ों और बीमारियों का प्रकाप भी कम होता है जिससे फलों की भण्डारण-आयु की क्षमता भी बढ़ जाती है। अत: बागवानों को केवल जाड़े की ही फसल लेनी चाहिए लेकिन अपने राज्य में आमतौर पर बरसात में ही अधिक फल लिया जाता है।

जाड़े के मौसम में अधिक फल लेने के लिए फरवरी से अप्रैल तक सिंचाई रोक देनी चाहिए। इसके अलावा जिस समय (मार्च-अप्रैल) अप्रैल में फूल अधिक खिले हों, उस समय 75 पी०पी०एम० नेफ्थलीन एसिटिक अम्ल (7.5 ग्राम 100 लीटर पानी में) या 300 पी०पी०एम० नेफ्थलीन एसीटिक अम्ल (30 ग्राम 100 लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें। ऐसा करने से काफी संख्या में फूल गिर जायेंगे जिनके फलस्वरूप बरसात में फल बहुत कम लगंगे और फिर जाड़े में अधिक तथा अच्छे फल प्राप्त होंगे।

कीट एवं रोग

फलमक्खी : बरसात में फल के अन्दर पिल्लू हो जाते हैं जो फलमक्खी के होते हैं। इसकी रोकथाम के लिए रोगर दवा का 0-05 प्रतिशत घोल का छिड़काव 10 दिनोंके अन्तर पर नन्हें फलों पर 3-4 बार करें।

छिलका खाने वाली इल्ली : पौधे के प्रभावित भागों पर काले जाले बन जाते हैं जिनमें इनका मल पदार्थ इकट्ठा रहता है। छिलके को खाकर कीड़े की इल्ली तनों और शाखाओं में गहरी सुरंगें बनाती हैं जो प्राय: शाखाओं की जोड़ पर दिखायी पड़ती हैं। इसके नियंत्रण के लिए रूई को पेट्रोल में भिंगोकर छेदों में भर दें। यह कार्य मार्च-अप्रैल में दो बार पर्याप्त है।

उकठा रोग : यह रोग बहुत भयावह है और एक बार बाग में लगने के कुछ वर्षों में पूरा बाग ही नष्ट हो जाता है। इस बीमारी के प्रकोप से शाखाओं और टहनियों का एक-एक कर ऊपर से सूखना आरम्भ होता है और वे नीचे तक सूखती चली जाती है। इस बीमारी से बचने हेतु निम्नलिखित उपाय करें।

रोगग्रस्त सूखी टहनियों को शीघ्र काटकर निकाल दें। कटाई ऐसी करें कि साथ में 15-20 सेमी० तक हरी स्वस्थ टहनी का भाग भी कट कर निकल जाय।

20-30 ग्राम बेन्लेट या वैभिस्टीन को 10-15 लीटर पानी में अच्छी तरह घोलकर प्रति पौधे के हिसाब से पौधों की जड़ों के पास डालें। दवा का घोल डालने से पहले पौधों के पास 60 सेमी० गोलाई में 15 सेमी० गहरी पट्टी बना लें। वर्ष में चार बार क्रमश: मार्च, जून, सितम्बर और अक्टूबर में यही उपचार दुहरायें। इसके अतिरिक्त 15 ग्राम जिंक सल्फेट और 5 मिली० मेटासिस्टॉक्स को 5 लीटर पानी में घोलकर वर्ष में दो बार (मार्च और सितम्बर में) पौधों पर छिड़काव करें। इस प्रकार के रोगग्रस्त पौधों की खाद और हरी खाद की मात्रा अधिक दी जाती है।

जहाँ रोग फैला हो, वहाँ बाग लगाने से एक माह पहले मिट्टी में नीला तूतिया का 1.0 प्रतिशत घोल मिलाना लाभदायक है। पुराने वृक्षों में भी हर वर्ष मिट्टी में यह दवा दी जाय।

फल पर दाग : विशेषकर बरसात में फलों पर उठे हुए दाग पड़ जाते हैं। कोसन दवा का घोल (300 ग्राम 100 लीटर पानी में) रोग दिखाई देते ही एक बार और 20 दिनों बाद दूसरी बार छिड़काव करना चाहिए।

उपज : फूल लगने के लगभग पाँच माह बाद फल पकते हैं। इसकी उपज बाग की देखरेख और फल की किस्म पर काफी निर्भर करती है। एक 8-10 वर्ष के पूर्ण विकसित पेड़ से 2.0 से 2.5 क्विंटल फल प्रतिवर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं।

❑

अध्याय **6**

उत्तक संवर्धित केला की वैज्ञानिक खेतीं

डा० मान बिहारी
विषयवस्तु विशेषज्ञ, पंडारक, पटना

जो किसान भाई केला की खेती करना चाहते हैं उन्हें ऊतक सवंर्धित केला की खेती करनी चाहिए। इस प्रकार का केला अधिक उपज देने वाला एवं गुणवत्ता युक्त प्रजाति या पौधे का चयन करके उसके वानस्पतिक अंग जैसे ऊतक लेकर नियंत्रित दशाओं में प्रयोगशाला में व्यावसायिक स्तर पर तैयार किया जाता है। सर्वप्रथम उन वांछित लक्षणों की पहचान करते हैं यथा अधिक उपज, बड़े आकार की पौध, मिठास, रोग एवं कीट का कम असर, अधिक भण्डारण क्षमता आदि। ऐसे तमाम वांछित लक्षणों को दिमाग में रखकर पौधे का चयन किया जाता है और यदि ऐसा सर्वगुण सम्पन्न पौध मिल गया तो इसके शरीर से ऊतक निकाल कर प्रयोगशाला में लाखों की तादाद में पौधे तैयार कर लिये जाते हैं। इन्हीं पौधों को प्रयोगशाला से निकाल कर थोड़ा कठोर बनाया जाता है और किसानों को रोपण हेतु वितरित कर दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस तरह तैयार पौधे खेत से ली गयी पुत्तियों से उत्तम होते हैं। ऊतक संवर्धित केला उपज एवं गुणवत्ता के अलावा जो सबसे बड़ी विशेषता है वह समरूपता पौधे का विकास एक सामान होता है। निश्चित समय पर घौद आती है साथ ही फलियों का आकार एक साथ होता है। ऐसी खुबियां पुत्तियों से रोपित केला में नहीं मिलती। अतः किसान भाई ऊतक संवर्धित केला की खेती करें। खेती करने में जिन बातों का ध्यान रखना है वह निम्नलिखित है–

t yok;| % केला के लिए घनघोर वर्षा तथा वायु में अधिक नमी वाली जलवायु सर्वोत्तम है। जो कि दक्षिण भारत में पायी जाती है। जहाँ ऋतुएं स्पष्ट होती हैं जैसे–बिहार, उत्तर प्रदेश में भी केला एक लाभदायक फसल है। अधिक पाला फसल को नुकसान पहुंचाता है। इसी प्रकार गर्म हवा तथा जल भराव जैसी स्थिति भी हानिप्रद होती है। उक्त परिस्थितियों का प्रबन्धन करके केला की खेती की जा सकती है।

feVVh % गहरी दोमट, जीवांशयुक्त जिसमें पानी ठहरता हो उत्तम है। हल्की दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी भी केला की खेती के काम लायी जा सकती है। खेत सममतल तथा जल निकास का अच्छा प्रबन्ध हो। सामान्यतः हल्की अम्लीय मृदा (6–6.5पी0एच0) उत्तम होती है। परन्तु हल्की क्षारीय मृदा में भी पैदावार अच्छी होती है।

[kr dh r|;kjh % किसान भाई कम से कम एक बार 20 से.मी. गहरी जुताई अवश्य करें, खरपतवार निकाले व समतल करें। जीवांश खाद जैसे– कम्पोस्ट, गोबर की खाद, अंतिम जुताई के समय खेत में बिखेर कर मिला दें।

mUur'khy i|tkfr;k % हरीछाल, महालक्ष्मी, ग्रैण्डनेने, रोबस्टा, ड्वार्फ कैवेन्डिस, पूवन, रसथाली, नेंड्रान, कर्पूरवल्ली, नेयपूवन आदि उन्नतषील प्रजातियाँ है। ऊतक संवर्धित केला इन्हीं प्रजातियों में से चुनाव करके खरीदें। पौधों की पालीथीन को सावधानीपूर्वक काट कर अलग कर दें। जिससे पिण्डी न टूटने पाये। खेत में 60× 60 × 60 से0मी0 आकर के गड्ढे खोदें यह कार्य 15 मई

से 15 जुलाई तक अवश्य कर लें। गड्ढे को 3 कि.ग्रा गोबर की खाद + 250 ग्राम नीम की खली + 10 ग्राम फोरेट 10जी + 10 ग्राम थीमेट का मिश्रण भर दें। इन भरे हुए गढ्ढों में प्रजाति के अनुसार 1.8 × 1-5 मी0 की दूरी पर पौध रोपित करें। रोपण के एक सप्ताह बाद काबेन्डाजिम 2 ग्राम प्रतिलीटर पानी का घोल जड़ों के पास मिट्टी में डालें। इसके एक सप्ताह बाद जीवाणु संक्रमण के बचाने हेतु स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 500 मि.ग्रा. प्रति.ली. पानी का छिड़काव करें।

[kkn ,o moZjd % प्रति पौधा 200 ग्राम नत्रजन, 60–100ग्राम फासफोरस एवं 250–300 ग्राम पोटाश की तत्व के रूप में संस्तुति की गयी है। जिसको कई भागों में बाँटकर निम्न तालिकानुसार पौधे की वृद्धिकाल के दौरान करना चाहिए।

vojkèk ijr % पौधे के नीचे पुआल या गन्ने की पत्तियों की 8–10 सेमी0 मोटी परत बिछा दें या पलवार को काम लें।

uj Qy dk xPNk o iqfRr;ka dk fudkyuk % समय–समय पर मुख्य पौधे के बगल से निकली पुत्तियों का निकाले रहें तथा जब घौद आ जाये तो नीचे का नर पुष्प गुच्छ चाकू से काट कर अलग कर दें। साथ ही पौधे को बांस आदि से सहारा दें जिससे कि हवा में गिरने न पाये।

Ø0 l0	moZjd iz;kx dk le;	ifr ikèk moZjd dh ek=k ¼xke e½					
		;fj;k	vekfu;k lYQV	lij QkLQV	E;jV vkQ ikVk"k	ftd lYQV	eXuhf'k;e
1.	रोपण के 30 दिन बाद	62	140	125	105	—	—
2.	रोपण के 75 दिन बाद	62	140	125	—	25	25
3.	रोपण के 125 दिन बाद	62	140	125	—	—	—
4.	रोपण के 165 दिन बाद	62	140	125	105	—	—
5.	रोपण के 210 दिन बाद	62	140	—	—	—	—
6.	रोपण के 255 दिन बाद	62	140	—	105	—	—
7.	रोपण के 300 दिन बाद	62	140	—	105	—	—
	;kx	434	980	500	420	25	25

mit % औसतन एक घौद 40–70 किलो ग्रा0 की प्राप्त होगी। प्रति हेक्टेयर पौधों के हिसाब से उपज की गणना कर सकते हैं। जैसे ही फलियां गोलायी लेने लगे एवं रग हल्का हो तेज धारदार चाकू से घौद को काट लें।

,dhÑr dhV iceku % केले में मुख्य रूप से बीटल, घुन व रसचूसक कीटों का प्रकोप होता है। इस हेतु खेत की सफाई रखें। सूखी पत्तियों को काटते रहें, नमी बनाये रखें। क्वीनालफास 2 मिली/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जमीन में फोरेट 10 जी मिलायें और पत्तियों के गोफें में 4–5 दाने डाल दें।

,dhÑr jkx iceku % केला में पर्णचित्ती रोग श्यामवर्ण, तनागलन व उक्ठा रोग प्रमुख रूप से लगते हैं। इस हेतु खेत की सफाई करें। जल निकास व्यवस्था करे। भूमि का शोधन करें। समय–समय फफूंद नाशी दवा जैसे कापर आक्सीक्लोराइड 3 ग्रा0 प्रति ली0 पानी की दर से छिड़काव करें।

❑

अध्याय 7

आँवला की वैज्ञानिक खेती

कृष्णा कुमार सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (पौधा प्रजनन),
कृषि विज्ञान केन्द्र, गोड्डा

आँवला का उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष ही है, जिसे यहाँ पुराने जमाने से ही उगाया जाता है। आँवले को प्राय: लोग 'औरा' भी कहते हैं। यह एक सम उष्णकटिबंधीय फल वृक्ष है जो जाड़ा तथा गर्मी दोनों मौसम को सहन करता है। इसके बढ़ाव के लिए वर्षा जरूरी है, लेकिन पौधे की जड़ों में पानी नहीं लगना चाहिए। इसके पौधे हिमालय की तराई से दक्षिण भारत के पहाड़ी इलाकों में जंगली रूप मे मिलता है। दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्यों के कुछ भागों में इसकी बागवानी रूप में की जाती है, परन्तु ये बाग भी प्राय: छोटे-छोटे ही है।

मिट्टी : आँवला की खेती प्राय: सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, पर अधिक बलुई मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं है। सबसे अच्छी खेती इसकी दोमट मिट्टी में होती है। इसे ऊसर भूमि में भी उगाया जा सकता है जिसका पी० एच० 7.5 से 9.0 तक हो। पथरीली मिट्टी में भी इसे भलीभाँति उपजते पाया गया है। इसे सूखे तथा नम दोनों प्रकार के क्षेत्रों में पैदा किया जा सकता है। लू या पाले का पेड़ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

वृक्ष-आकार : आँवला वृक्ष काफी बड़ा होता है और इसके पत्ते बहुत ही छोटे-छोटे होते हैं जो उपशाखाओं पर इस प्रकार लगे रहते हैं कि प्रत्येक उपशाखा एक संयुक्त पत्ती की तरह दिखाई पड़ती है। इसकी डालियों में भी फूल लगते हैं, जिनमें फल लगते हैं। इनकी पत्तियों में भी फूल लगते हैं और फल के रूप में बदलते हैं।

गुण : आँवला का फल विटामिन 'सी' का सर्वोत्तम और प्राकृतिक स्त्रोत है। इसमें विटामिन 'सी' नष्ट नहीं होता। इसमें पाया जाने वाला विटामिन 'सी' हमारी त्वचा, नेत्र ज्योति, केश, फेफड़ा और कान्ति के लिए बहुत उपयोगी होता है। शरीर को युवा और शक्तिशाली बनाये रखने के लिए यह बेजोड़ फल है। शुरू में यह फल कसैला होता है, परन्तु शरदऋतु के अन्त में जब यह ठीक से पक जाता है तो इसका कसैलापन काफी कम हो जाता है और यह सेवन योग्य हो जाता है। यह भूख बढ़ाने वाला, रक्तशोधक, स्मरण शक्ति, पौरुषबल और ओज की वृद्धि करके मस्तिष्क एवं हृदय को बल देता है तथा वायु बढ़ाता है।

पौध की तैयारी : आँवले के पौधों को बीज तथा कलम दोनों विधियों द्वारा तैयार किया जाता है। पहले आँवले का प्रवर्द्धन भेंट कलम द्वारा ही किया जाता था। परन्तु, भेंट कलम द्वारा तैयार पौधे कमजोर होते हैं तथा खेत में लगाने पर काफी भर जाते हैं। अत: सबसे अच्छी विधि 'चश्मा' है। जून माह में चश्मा लगाने पर काफी अधिक सफलता मिलती है। 'शील्ड चश्मा' सबसे अधिक अच्छा पाया गया है। इसके लिए बीजू पौधे एक साल का या लगभग दो साल पुराना लेते हैं। बीजू पेड़ों को ऊपर काट देते हैं, फिर जो नया प्ररोह निकलता है, उसपर अच्छे आँवले किस्म से कली लेकर चश्मा चढ़ाकर बाँध देते हैं। कली निकालते समय यह ध्यान रखें कि कली वैसे पौधे तथा शाखा से लें जिनमें मादा फूलों की संख्या अधिक निकलती हो। अन्यथा तैयार पौधों में भविष्य में फूल-फल लगने में कमी हो जाती है या एकदम नहीं लगते। कलम तैयार होने के पश्चात दूसरे वर्ष इन्हें बागवानी हेतु लगा सकते हैं।

फलन : बीज पौधों में फल देर से आते हैं जबकि कलम किये गये पौधों को लगाने के लगभग 4-

5 वर्षों में थोड़े-बहुत फल लगने आरम्भ होते हैं तथा 10-11 वर्षों बादपूर्ण रूप से फल लगने आरम्भ हो जाते हैं। बसन्त ऋतु के समय पेड़ों में नयी वृद्धि के साथ फूल आने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसके फूल दो प्रकार के (1) नर और (2) मादा होते हैं। नर फूलों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा मादा फूलों की संख्या बहुत कम। इसमें हवा तथा मधुमक्खी द्वारा परागन होता है। बनारसी किस्म में 12 से 18 प्रतिशत ही परागन होता है। अत: इसे बढ़ाने हेतु बाग में मधुमक्खी पालन करने से परागन बढ़ जायेंगे तथा प्रति पेड़ फलों की संख्या बढ़ायी जा सकती है। फल सेट होने के बाद भ्रूण अगस्त तक प्रसुप्त अवस्था में रहता है, अत: अगस्त तक फल पेड़ पर दिखलायी नहीं पड़ते। जब अगस्त में भ्रूण की वृद्धि होती है तो फल भी बढ़ने लगते हैं और जनवरी-फरवरी में तैयार हो जाते हैं।

पौध लगना : अन्य फल वृक्षों की तरह इसके लिए भी 1 मीटर व्यास वाला गोलाकर 1 मीटर गहरा गड्ढा बनाकर खाद आदि डालकर इसके कलम पौधों को लगाते हैं। बागवानी में पौधे की दूरी 10 मीटर रखते हैं। इसकी रोपाई का उत्तम समय जुलाई-अगस्त है। इसे फरवरी माह में भी लगा सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक : आँवला पौधा को लगाने से एक-दो माह पहले प्रत्येक गड्ढे में 40 किलो गोबर की सड़ी खाद, 10 किलो सड़ी पत्ती की खाद और एक किलो अंडों का खल्ली-चूर मिट्टी में मिलाकर गड्ढा को भर देना चाहिए। फिर आँवला पौधे को अगस्त-सितम्बर में लगाते समय 100 ग्राम बी०एच०सी० पाउडर प्रति गड्ढे में मिलाते हुए पौधे लगायें। पौधों के ठीक बीचो-बीच गड्ढे में लगाना चाहिए तथा मिट्टी को अच्छी तरह दबाकर सिंचाई कर दें। आँवले के प्रत्येक पौधे को 10 किलोग्राम सड़े गोबर की खाद, 100 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फास्फोरस तथा 75 ग्राम पोटाश डालें। अगले वर्ष यह मात्रा दुगुनी कर डालें। इसी तरह प्रत्येक अगले वर्ष इसकी मात्रा तीनगुनी-चारगुनी करते जायें। इस प्रकार खाद एवं उर्वरक की यह मात्रा पौधे की आयु के साथ-साथ बढ़ती जाती है और पौधे को 10 वर्ष तक खाद की मात्रा इसी अनुपात में पहले वर्ष की अपेक्षा 10 गुनी हो जायेगी। 10 वर्ष पश्चात् उतनी ही खाद की मात्रा देते रहें जितनी 10 वर्ष में दी गई है। गोबर की खाद और फास्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन और पोटाश की आधी मात्रा जून-जुलाई में दें तथा नेत्रजन की आधी एवं पोटाश की आधी मात्रा नवम्बर-दिसम्बर में दें। अच्छे फलन हेतु फूल आने से पहले प्रति पेड़ 3-4 किलो सुपर फास्फेट डालने से फल लगने में वृद्धि होती है।

सिंचाई : पौधे लगाने के बाद तुरन्त सिंचाई कर दें। उसके बाद आवश्यकतानुसार 7-15 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। जाड़ा और गर्मी में पानी पटाने का पूरा इन्तजाम रखना चाहिए ताकि पौधे सूखने न पायें।

आँवला बाग में अन्तर्वर्ती खेती : आँवला को बागवानी के आरम्भ के 5-7 वर्षों तक दलहनी फसल उगाना लाभदायक है। ऊसर भूमि में आरम्भ में ढैंचा या सनई की बुआई करके उसे हरी खाद के रूप में जमीन में गाड़ देना काफी लाभप्रद होता है।

किस्में : आँवला की उत्तम किस्मों का कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है। इसके उत्तम किस्मों में बनारसी, चकिया, फ्रांसिस या हाथीझूल, कृष्णा, कंचन और नरेन्द्र आँवला-7 है।

1. बनारसी : यह आँवले की प्रसिद्ध अगेती किस्म है। इसके पौधों की सीधी बढ़वार होती है। फलों का आकार बड़ा 50-60 ग्राम प्रतिफल, सतह चिकना हल्के पीले रंग का होता है। मादा फूलों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। अत: प्रति पेड़ काफी कम फल पकड़ते हैं। विटामिन 'सी' की मात्रा सर्वाधिक पायी जाती है। इसके फलों से व्यवसायिक स्तर पर मुरब्बा बनाया जाता है। इसके अधिकांश फल फट जाते हैं, जिस कारण इस किस्म को व्यवसायिक रोपण हेतु अनुशंसा नहीं की जाती है।

2. चकाइया : यह देर से पकने वाली किस्म है। इसके वृक्षों का फैलाव अधिक होता है। फल अपेक्षाकृत मध्य आकार के चपटे 30-40 ग्राम प्रतिफल का होता है। फल हरे रंग को चिकनी सतह वाले रसेदार होते हैं। गूदा रेशेदार तथा सख्त होता है। मादा फूलों की संख्या अधिक होने के कारण फलन अच्छा होता है तथा फल शाखा से मजबूती से जुड़े रहते हैं, जिस कारण प्रारम्भिक अवस्था में गिरते नहीं हैं। मध्यम भंडारण क्षमता होने के कारण अँचार तथा अन्य उत्पादनों के लिए उपयुक्त होता है। इस किस्म में क्षय व्याधि का प्रकोप नहीं होता है। इन्हीं सब गुणों के कारण इसकी व्यावसायिक बागवानी की अनुशंसा की जाती है।

3. फ्रांसिस (हाथीझूल) : इस किस्म के पौधों की शाखाएँ तथा पत्तियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं। यह मध्यम उत्पादन क्षमता एवं मध्यम समय में तैयार होने वाली किस्म है। इसके फलों का आकार मध्यम से बड़ा अण्डाकार होता है, जिनके प्रति फल का वजन 40-50 ग्राम होता है। इनकी सतह चिकनी, हल्के हरे पीले रंग के मुलायम गूदे के तथा लगभग रेशाहीन होते हैं। मादा फूलों की संख्या अपेक्षाकृत मध्यम होती है। फलों की भंडारण-क्षमता भी मध्यम होती है। इसके फलों में क्षय व्याधि का प्रकोप पाया जाता है। अत: मुरब्बा बनाने हेतु यह किस्म अच्छी नहीं होती है। इनमें सुहागे की कमी के कारण इनके फल काले पड़ने लगे तो 0.6% सुहागा (बोरेक्स) का छिड़काव 10-12 दिनों के अन्तर पर 2-3 बार कर देना चाहिए।

4. कृष्णा : यह किस्म बनारसी जाति के बीजू पौधों से चयन की गई है। यह भी अगेती किस्म है। इसके फल औसतन बड़े आकार के, करीब 45 ग्रा.प्रतिफल होते हैं। फलों की सतह चिकनी तथा हल्के पीले रंग की होती है तथा प्रकाश वाले हिस्से के फलों पर हल्के लाल या गुलाबी रंग के धब्बे पाये जाते हैं। गूदा लगभग रेशाहीन, सख्त एवं अर्द्धपारदर्शक होता है। इसकी भंडारण-क्षमता अच्छी होती है। अत: मुरब्बा हेतु यह एक सर्वोत्तम किस्म है। मादा फूलों की संख्या भी औसतन बनारसी से अधिक होती है जिस कारण मध्यम उत्पादन क्षमता वाली होती है। इस किस्म की व्यावसायिक आगवानी हेतु अनुशंसा की जाती है।

5. कंचन : यह चकइया के बीजू पौधों से चयनित किस्म है। इसके पौधों का फैलाव अधिक होता है तथा मादा फूलों की संख्या अधिक होने के कारण फसल अच्छी होती है। फल मध्यम आकार के छोटे होते हैं। जिनकी सतह चिकनी एवं हल्के पीले रंग की होती है। गूदा रेशायुक्त कठोर होने के कारण उत्पादों के लिए एक उपयुक्त किस्म है।

6. नरेन्द्र आँवला-7 : यह हाथीझूल किस्म के बीजू पौधा से चयनित एक उत्तम किस्म है। पौधों की बढ़वार सीधी होती है। मादा फूलों की संख्या सर्वाधिक होने के कारण इस किस्म की उत्पादन-क्षमता काफी अच्छी होती है। फलों का आकार मध्यम से बड़ा करीब 45-50 ग्राम प्रति फल होता है जिसकी सतह चिकनी तथा पीले रंग के होती है। गूदा रेशाहीन व मुलायम होता है। मध्यम भंडारण-क्षमता होने के कारण मुरब्बा बनाने के लिए यह एक उपयुक्त किस्म है। रोपण के बाद 3-4 वर्षों में फल देने लगता है। बागवानी के लिए यह एक उत्तम किस्म है जिसे नरेन्द्रदेव कृषि विश्वविद्यालय, फैजाबादसे विकसित की गई है।

7. फलों की तोड़ाई एवं उपज : आँवला फल यों तो चटनी, अँचार आदि के लिए अक्टूबर-नवम्बर से ही टूटने शुरू हो जाते हैं। परन्तु, मुख्यत: इनको तोड़ई दिसम्बर-जनवरी में परिपक्व होने पर ही करते हैं। तोड़ने के लिए जालीनुमा डालिया झोले लगे लग्गी को उपयोग करना चाहिए, अन्यथा फल चोट खाकर हो जाते हैं तथा मुरब्बे लायक नहीं रहते और उन्हें अधिक समय तक नहीं रखा जासकता। 10 से 12 वर्ष की आयु वाले विकसित पौधों से लगभग 2 या 3 क्विटल फल प्राप्त होते हैं। प्रति हेक्टर औसतन 20-25 क्विंटल उपज प्राप्त होती है।

उपयोग : इसके फल मुरब्बे और अँचार के रूप तथा जैम बनाकर ही उपयोग किये जाते हैं। बीजू फल पौधे के फलों का च्यवनप्राश बनाने में उपयोग किये जाते हैं। फल सुखाकर कई दवाओं की बीमारियों के लिए बहुत ही लाभप्रद होता है। आँवला केश तेल बनाने तथा सरबाल धुलाई में भी काम आता है। अँचार के अतिरिक्त ताजे फलों से चटनी बनायी जाती है।

रोग-व्याधि : आँवला के पौधों को सबसे अधिक हानि धड़छेदक कीड़ों से होती है। ये कीड़े तनों तथा डालियों में छेद कर देते हैं जिसके फलस्वरूप वृक्ष की वृद्धि रूक जाती है तथा पैदावार बहुत कम हो जाती है और कुछ समय पश्चात् पेड़ सूख जाते हैं। अत: ज्योंही वृक्ष में मुरछापन नजर आये, इसकी खोज करें। कीड़े जहाँ से भीतर घुसे होंगे, वहाँ कुछ लकड़ी की भूसी नजर आयेगी। उसमें लोहा की पतली कमानी घुसाकर छेद बना देना चाहिए फिर तारपीन तेल में रूई भिंगोकर कमानी के सहारे भीतर घुसा देना चाहिए जिससे कीड़े मर जायेंगे। इसके बाद वृक्ष में अधिक खाद आदि डालकर सिंचाई करने से लाभहोता है तथा वृक्ष की हालत अच्छी हो जाती है।

अगर आँवला फलों में ऊत्तक क्षय व्याधि आदि के कारण काले धब्बे पड़ने लगें तो 0.6 प्रतिशत सुहागा (बोरेक्स) का छिड़काव 10-12 दिनों के अन्तर से 2-3 बार कर देने से काले धब्बे पड़ने बन्द हो जाते हैं।

❑

अध्याय 8

पपीता की वैज्ञानिक खेती

डा० कन्हैया सिंह
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा (बिहार)

पपीता एक प्रमुख उष्ण एवं उपोष्ण कटिवंधीय फल है। भारत का विश्व में पपीता उत्पादक देशों में ब्राजील, मैक्सिको एवं नाइजिरिया के बाद चौथा स्थान है। भारत में पपीता की खेती 73.7 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में होती है तथा उत्पादन 25.90 लाख टन है (वर्ष 2003)। आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, असम, बिहार, तमिलनाडु, मधय प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश प्रमुख उत्पादक राज्य है। बिहार में इसका क्षेत्रफल अनुमानत: 2000 हेक्टेयर तथा उत्पादन 64 हजार टन है। वैसे पपीता की खेती पूरे बिहार में होती है किन्तु व्यावसायिक स्तर पर इसकी खेती समस्तीपुर, बेगुसराय, मुगेर, वैशाली एवं भागलपुर जिलों में होती है। इसके औषधीय गुणों एवं आर्थिक रूप से लाभकारी होने के कारण पूर्व के कुछ वर्षो में लोगों ने इसकी खेती की ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया जिससे पिछले एक दशक में पपीता के उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई।

इसके फलों में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो कि आम के बाद दूसरे स्थान पर है। इसके अतिरिक्त विटामिन 'सी' एवं खनिज लवण भी पाये जाते है। ताजा उपयोग के अतिरिक्त पपीता के फलों से अनेक परिरक्षित पदार्थ बनाये जाते हैं। कच्चे फल का उपयोग पेठा, बर्फी, खीर, रायता इत्यादि के लिए किया जाता है जबकि पके फलों से जैम, जेली, नेक्टर तथा कैन्डी आदि बनाये जाते है। इसके साथ-साथ इसमें एक विशिष्ट प्रकार की एन्जाइम होती है जिसे पपेन कहते है जो कि पपीते के कच्चे फलों का सुखाया हुआ दूध है। पपीता का औषधीय गुण इसी पपेन के कारण होता है।

भूमि एवं जलवायु

पपीते की सफल बागवानी हेतु गहरी और उपजाऊ, सामान्य पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त मानी गयी है। इसकी बागवानी के लिए भूमि में जल निकास का होना बहुत जरुरी है क्योंकि यह जल भराव के प्रति काफी सुग्राह्य है।

पपीता एक उष्ण कटिबन्धीय फल है किन्तु इसकी खेती बिहार की समशीतोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जा रही है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊँचाई तक की जा सकती है। वायुमण्डल का तापमान 10° सें. से कम होने पर पपीता की वृद्धि, फलों का लगना तथा फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पपीता की अच्छी वृद्धि के लिए 22° से. से 26° से. तापमान उपयुक्त पाया गया है। औसत वार्षिक वर्षा 1200-1500 मिमी. पर्याप्त होती है। पपीता के पकने के समय शुष्क एवं गर्म मौसम हाने से फलों की मिठास बढ़ जाती है।

किस्में

पपीता एक पर परागण वाली फसल है तथा इसका व्यावसायिक प्रवर्धन बीज के द्वारा होने के कारण एक ही प्रजाति में बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है। वर्तमान में भारत में पपीता की कई किस्में विभिन्न प्रदेशों मे उगायी जा रहीं है। जिनमें प्रमुख रूप से 20 उन्नत किस्में है तथा कुछ स्थानीय एवं विदेशी किस्में

हैं। स्थानीय किस्मों में राँची, बारवानी तथा मधु विन्दू प्रमुख हैं। विदेशी किस्मों में वाशिंगटन, सोलो, सनराइज सोलो एवं रेड लेडी प्रमुख हैं। पपीता की कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा (बिहार) द्वारा विकसित किस्में

पूसा डेलिसियस : यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है जिसमें मादा और उभयलिंगी पौधे निकलते है तथा उभयलिंगी पौधे भी फल देते है। यह 80 सेमी. की ऊँचाई से फल देता है। इसका फल अत्यन्त स्वादिष्ट एवं सुगन्धित होता है। फल का आकार मध्यम से लेकर साधारण बड़ा होता है। जिसका वजन 1-2 किग्रा. तक होता है। पकने पर फल के गूदे का रंग गहरा नारंगी होता है तथा गूदा ठोस होता है। गूदे की मोटाई 4.0 सेमी. तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 13° ब्रिक्स होता है। फलों की पैदावार 45 किग्रा. प्रति पेड़ होती है।

पूसा मजेस्टी : इस प्रजाति में भी पूसा डेलिसियस की भाँति मादा एवं उभयलिंगी पौधे निकलते है। यह 50 सेमी. की ऊँचाई से फल देता है तथा एक फल का वजन 1.0-2.5 किग्रा. तक होता है। यह किस्म पैदावार में उत्तम है तथा फल में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके फल अधिक टिकाऊ होते है तथा इसमें विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। पकने पर गूदा ठोस एवं पीले रंग का होता है तथा कुल घुलनशील ठोस 9 से 10° ब्रिक्स होता है। एक पेड़ से 40 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे की मोटाई 3.5 सेमी. होती है। यह प्रजाति सूत्रकृमि अवरोधी है।

पूसा ड्वार्फ : यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें नर एवं मादा पौधे निकलते है। इस किस्म के पौधे बौने होते है। तथा इसमें फलन जमीन से 40 सेमी. की ऊँचाई से होती है तथा एक फल का वजन 0.5 से 1.5 किग्रा. होता है। इसकी पैदावार 40-45 किग्रा. प्रति पौध है। फल के पकने पर गूदे का रंग पीला होता है। गूदे की मोटाई 3.5 सेमी. होती है तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9° ब्रिक्स होता है। पौधा बौना होने के कारण इसे आँधी या तूफान से कम नुकसान होता है।

पूसा जायन्ट : यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। इस किस्म के पौधे विशालकाय होते है जिसमे फलन जमीन से 80 सेमी. की ऊँचाई से होती है। इसके फल बड़े होते है तथा एक फल का वजन 1.5 से 3.5 किग्रा. तक होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 5 सेमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 8° ब्रिक्स होती है। प्रति पेड़ औसत उपज 30-35 किग्रा. है। यह किस्म पेठा और सब्जी बनाने के लिये काफी उपयुक्त है।

पूसा नन्हा : यह पपीता की सबसे बौनी प्रजाति है जो गामा किरण द्वारा विकसित की गयी है। यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। यह 30 सेमी. की ऊँचाई से फलना प्रारम्भ करता है। इसमें प्रति पेड़ 25 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 3 सेमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9° ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति सघन बागवानी तथा गृह वाटिका के लिए काफी उपयुक्त पायी गयी है।

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बंगलौर द्वारा विकसित किस्में :

कुर्ग हनी ड्यू : यह किस्म भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर के केन्द्रीय वागवानी प्रयोग केन्द्र चेट्टाली द्वारा चयनित किस्म है जिसका चयन हनी ड्यू नामक प्रजाति से किया गया है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके फल लम्बे, अण्डाकार आकार के एवं मोटे गूदेदार होते है। फल का वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। गूदे का रंग पीला होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 70 किग्रा. तक होती है।

सूर्या : यह सनराइज सोलो एवं पिंक फ्लेश स्वीट के संकरण द्वारा विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके फल मधयम आकार के होते हैं जिनका औसत वजन 600-800 ग्राम तक होता है तथा बीज की कैविटी कम होती है। फल का गूदा गहरा लाल रंग का होता है जिसकी मोटाई 3-3.5 सेमी. तथा कुल घुलनशील ठोस 13.5-150 ब्रिक्स होता है। फल की भंडारण क्षमता भी अच्छी है। प्रति पौध औसत उपज 55-65 किग्रा. तक होती है।

तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा विकसित किस्में

को० 1 : यह प्रजाति 1972 में राँची प्रजाति से चयनित की गयी है। यह एक डायोसियस किस्म है जिसके पौधे छोटे होते हैं। फल मधयम आकार के गोल होते है जिनका गूदा पीले रंग का होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 120 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 40 किग्रा. तक होती है।

को० 2 : इस किस्म का चयन 1979 में स्थानीय किस्म से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें पपेन प्रचुर मात्रा (4 से 6 ग्राम प्रति फल) में पायी जाती है। फल का औसत वजन 1.5 से 2. 0 किग्रा. होता है। फल में 75 प्रतिशत गूदा होता है जिसकी मोटाई 3.8 से.मी. तथा रंग नारंगी होता है। फल का आकार बड़ा होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 11.4 से 13.50 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 80-90 फल प्रति वर्ष होती है। पपेन की औसत उपज 250 से 300 किग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है।

को० 3 : यह को० 2 एवं सनराइज सोलो के संकरण द्वारा वर्ष 1983 में विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। यह ताजे फल के रूप में खाने हेतु सर्वोत्तम किस्म है। इसके फल मधयम आकार के होते है जिनका औसत वजन 500 से 800 ग्राम तक होता है। फल में गूदे का रंग लाल होता है। जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 14.6° ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 90 से 120 फल होती है।

को० 4 : यह किस्म भी वर्ष 1983 में को० 1 एवं वाशिंगटन के संकरण से विकसित की गयी है। यह एक डायोसियस प्रजाति है। पौधे के तने तथा पत्ती के डंठल का रंग वैंगनी होता है। फल मधयम आकार का होता है जिसका औसत वजन 1.2 से 1.5 किग्रा. तक होता है। फल में गूदे का रंग पीला होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.2° ब्रिक्स होती है। औसत उपज प्रति वर्ष 80 से 90 फल प्रति पौध होती है।

को० 5 : इस प्रजाति का चयन वर्ष 1985 में वाशिंगटन प्रजाति से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जो पपेन उत्पादन हेतु सर्वोत्तम पायी गयी है। प्रति फल 14.45 ग्राम शुष्क पपेन पाया जाता है। पत्ती के डंठल का रंग गुलाबी होता है। फल का औसत वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13° ब्रिक्स होती है। 2 वर्ष के फसल चक्र में औसत उपज 75-80 फल प्रति पौध होती है। शुष्क पपेन की औसत उपज 1500-1600 किग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है जिसमें 72 प्रतिशत प्रोटीन पायी जाती है।

को० 6 : इस प्रजाति का चयन वर्ष 1986 मे जायन्ट प्रजाति से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जो पपेन उत्पादन तथा ताजा खाने के लिए उपयोगी पायी गयी है। इसके पौधे छोटे होते हैं तथा फल की तुड़ाई पौध रोपण के आठवें माह से शुरू हो जाती है। फल का औसत वजन 2 किग्रा. तक होता है। फल के गूदे का रंग पीला होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.60 ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 80-100 फल है। प्रति फल शुष्क पपेन की मात्रा 7.5 से 8.0 ग्राम तक होती है।

को० 7 : यह पूसा डेलिसियस, को०3, सी.पी.-75 एवं कुर्ग हनी ड्यू के बहुसंकरण द्वारा वर्ष 1997 में विकसित संकर किस्म है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है जिसमें फल जमीन से 52.2 सेमी. की ऊँचाई से लगते हैं। इसके फल लम्बे, अण्डाकार होते हैं जिसमें गूदे का रंग लाल होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 16.7° ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति 112.7 फल प्रति पौध उपज देती है जो कि 340.9 टन प्रति हेक्टेयर है।

अन्य किस्में

राँची : यह प्रजाति राँची (झारखण्ड) के आस पास छोटानागपुर क्षेत्र मे पायी जाती है। इसमें नर, मादा तथा उभयलिंगी तीनों प्रकार के पेड़ मिलते है। इसके फल काफी बड़े होते है तथा उभयलिगी फल का वजन 15 किग्रा. तक पाया गया है। मादा पेड़ से एक फल का वजन 5 से 8 किग्रा. तक पाया गया है जो दूर से देखने पर कद्दू जैसा दिखाई देते है। लेकिन इसका बीज बाहर कही भी ले जाकर बोने से फल का वजन घट जाता है।

पौध प्रवर्धन

पपीता का व्यवसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा होता है। किन्तु पपीता को बड़े पैमाने पर उगाने में सबसे बड़ी बाधा शुद्ध बीज का उपलब्ध न होना है। अत: पपीता का शुद्ध बीज ही बुवाई हेतु उपयोग करना चाहिए जो कि किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए।

बीज की मात्रा : 300-500 ग्राम प्रति हेक्टेयर।

पौध तैयार करना

पौधशाला में बीज बोने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मी. चौड़ी तथा 15 सेंमी. ऊँची क्यारियाँ बनाना चाहिए। मिट्टी में गोबर की खाद मिलाकर बारीक बना लेना चाहिए। बीज को क्यारी में कतार में लगाना चाहिए। कतार से कतार की दूरी 10 सेंमी. तथा बीज को 1 सेंमी. गहरा बोना चाहिए। इसके बाद बीज को गोबर की खाद या कम्पोस्ट को भुरभुरी बनाकर ढक देना चाहिए। वर्षा या तेज धूप से बीज को बचाने के लिए खर या पुआल से ढक देना चाहिए। इसके उपरान्त पौधशाला में सुबह फव्वारे से पानी प्रतिदिन देना चाहिए जब तक बीज का अंकुरण न हो जाय। पौधे को गलका रोग से बचाने के लिए बीज को थायरम, केप्टान या सिरेसान (2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित करना चाहिए। पौधशाला में जब भी गलका रोग दिखायी पड़े बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या मैंकोजेब या रिडोमिल या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का तुरन्त छिड़काव करना चाहिए। पपीते का बीज 7 से 15 दिन के भीतर जम जाते हैं तथा जमने के बाद पुआल हटा देना चाहिए। पुआल हटाने के बाद फब्बारा द्वारा हल्की सिंचाई कर देना चाहिए।

पौधो को पॉलीथीन के थैलियों में उगाना

पौधों को पॉलीथीन की थैलियों में उगाने हेतु छेद किये गये 150 से 200 गेज वाले पॉलीथीन के थैलों जिनकी लम्बाई 22 सेंमी. तथा चौड़ाई 15 सेमी. हो काम में लाया जा सकता है। थैलों को एक तिहाई बालू, एक तिहाई कम्पोस्ट तथा एक तिहाई मिट्टी मिलाकर भर लेना चाहिए। प्रति थैले में 3-4 बीज एक सेमी. की गहराई पर बोने के बाद पानी से सिंचाई कर देना चाहिए। पौधे जमने के बाद उचित देखभाल करनी चाहिए।

पौध तैयार करने का समय : साधारणतया पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15-20 सेंमी0 की ऊँचाई के हो जाते है। बिहार में जहाँ पानी जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेजी से फैलते है वहाँ अगस्त के अंत में या सितम्बर के शुरु में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

पौध रोपण एवं देखभाल

पपीता की खेती हेतु ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए जहाँ बरसात में पानी नही ठहरता हो। भूमि का चुनाव करने के बाद गर्मी के दिनों में भूमि को अच्छी तरह 2-3 बार जुताई करके तैयार करना चाहिए। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पपीता को 1.8 × 1.8 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। पौध लगाने हेतु निर्धारित दूरी पर गर्मी के दिनो में 60 × 60 × 60 सेंमी. के आकार के गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढे को 15 दिन तक खुला छोड़ दें। वर्षा शुरु होने के पूर्व गड्ढे के उपर की भुरभुरी मिट्टी में 20 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 किग्रा. नीम की खली तथा 1 किग्रा. हड्डी का चूर्ण तथा 5 से 10 ग्राम फ्यूराडान या थीमेंट 10 जी का मिश्रण मिलाकर गड्ढे को अच्छी तरह भर दें।

जब पौधे नर्सरी में 15-20 सेंमी. की ऊँचाई के हो जायें तब अक्टूबर माह में पौधों को गड्ढे के बीचो बीच लगाये। डायोसियस किस्म के तीन पौधे तथा गायनोडायोसियस किस्म का एक पौधा प्रति गड्ढा लगाना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक पौधे को हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

पौधों को खेत में लग जाने के बाद समुचित देखभाल करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी अधिक वर्षा के कारण भी पौधे नष्ट हो जाते है। अत: उन्हे उचित देखरेख द्वारा बचाना चाहिए। जाड़े के

दिनों में जहाँ ठंड अधिक पड़ती है, कोमल पौधों को पालीथीन या ज्वार की टट्टी द्वारा ढक देना चाहिए। कुछ कीड़े कोमल पौधों को काटकर शुरु में नष्ट कर देते है उनसे पौधों को बचाना चाहिए। वर्षा के कारण नष्ट हुए पौधों को बसंत ऋतु में दूसरा पौधा लगाकर भर देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

पपीते को बहुत अधिक खाद की आवश्कता होती है। इस क्षेत्रीय स्टेशन पर किये गये प्रयोगों द्वारा साबित हुआ है कि प्रत्येक फलने वाले पेड़ों को 200-250 ग्रा. नाइट्रोजन, 200-250 ग्रा. फॉस्फोरस तथा 250 से 500 ग्रा. पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। साधारणतया उपरोक्त खाद तत्वों के लिए यूरिया 450 से 550 ग्रा, सिंगल सुपर फॉस्फेट 1200 से 1500 ग्रा. तथा म्यूरियेट ऑफ पोटाश 450-850 ग्रा. लेकर उन्हें मिश्रित कर लेना चाहिए तथा चार भागों में बाँट कर प्रत्येक माह के शुरु में जुलाई से अक्टूबर तक वृक्ष के छाँव के नीचे पौधे से 30 सेमी. की गोलाई में देकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) तथा जिंक सल्फेट (5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना चाहिए।

सिंचाई

पपीता के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबंध बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए जिससे पौधे जीवित रह सके। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जोते है तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी ज्यादा होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते है। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। पपीता में टपकन सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अन्तर्गत 8-10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी पायी गयी है। इस प्रकार 40-50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने चारो तरफ सूखे खर पतवार या काली पॉलीथीन की पलवार विछाना चाहिये।

फूलन एवं फलन

पौधे लगाने के लगभग 6 माह बाद मार्च-अप्रैल माह से पौधों में फूल आने लगते है। पपीता में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाये जाते हैं। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते हैं, किन्तु मादा पौधे स्थायी होते हैं। नर एवं मादा पौधों की पहचान फूल के आधार पर कर सकते है। ज्योंही नर पौधे दिखाई पड़े तुरंत काटकर खेत से निकाल देना चाहिए। किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य छोड़ देना चाहिए।

पपीता का पौधा 10 से 15 महीनों के अन्दर फल देना प्रारम्भ कर देता है तथा बसन्त ऋतु से लेकर ग्रीष्म ऋतु तक फल परिपक्व होते रहते है। पपीते जब परिपक्व हो जाये तो उन्हे पेड़ से तोड़ लेना चाहिए।

रोग एवं कीट नियंत्रण

कवक जनित रोग

1. आर्द्रगलन रोग : यह बीमारी पौधशाला में पीथियम एफैनिडरमेटम नामक कवक के कारण होती है। इसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है तथा पौधे का तना जमीन के पास से सड़ जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है। अत: इससे बचाव के लिए नर्सरी की मिट्टी को बोने से पहले फारमेल्डिहाइड के 2.5 प्रतिशत घोल से उपचारित कर पालिथीन से 48 घंटों के लिए ढक देना चाहिए तथा बीज को थायरम, एग्रोसान जी.एन. या केप्टान (2 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित कर बोना चाहिए। पौधशाला में इस रोग से बचाव के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या कापर आक्सीक्लोराइड या मैंकोजेब (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव एक सप्ताह के अन्तराल पर 3-4 बार करना चाहिए।

2, जड़ एवं तनों का सड़ना : यह रोग पीथियम एफैनिडरमेटम एवं फाइटोफ्थोरा पामीवोरा नामक कवक के कारण होता है। इस रोग में जड़ तथा तना सड़ने से पेड़ सूख जाता है। इसका तने पर प्रथम लक्षण जलीय घब्बे के रुप में होता है। जो बाद में बढ़कर तने के चारों तरफ फैल जाता है। पौधे के उपर की पत्तियाँ मुरझाकर पीली पड़ जाती है तथा पेड़ सूखकर गिर जाते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए पपीता को जल जमाव क्षेत्र में नही लगाना चाहिए तथा पपीता के बगीचे मे जल निकास का उचित प्रवन्ध होना चाहिए। यदि तने में धब्बे दिखाई देते हो तो रिडोमिल (मेटालाक्सिल) या मैंकोजेब (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का घोल बनाकर पौधों के तने के पास मिट्टी में छिड़काव करना चाहिए।

3, फलों का सड़ना (एन्थ्रेक्नोंज) : यह पपीता के फल की प्रमुख बीमारी है। यह कोलिटोट्राईकम ग्लियोस्पोरायडस नामक कवक के द्वारा होती है। इस रोग में फलों के उपर छोटा जलीय धब्बा बन जाता है जो बाद में बढकर पीले या काले रंग का हो जाता है। यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल पकने के पूर्व ही गिर जाते है। इसकी रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स 50 या मैंकोजेब (2.5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

4. कली एवं फल के तनो का सड़ना : यह पपीता में लगने वाली एक नई बीमारी है जो फ्यूजैरियम सोलनाई नामक कवक के द्वारा लगती है। शुरु में इस रोग के कारण फल तथा कलिका के पास का तना पीला हो जाता है जो बाद में फल के पूरे तना पर फैल जाता है। जिसके कारणप फल सिकुड़ जाते हैं तथा बाद में झड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का 1-5 प्रतिशत या ब्लाइटाक्स 50 (3 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

5. चूर्णी फफूँद : यह रोग ओडियम यूडिकम एवं ओडियम कैरिकी नामक कवक से होता है। इससे प्रभावित पत्तियों पर सफेद चूर्ण जैसा जमाव हो जाता है जो बाद में सूख जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए सल्फेक्स (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

विषाणु जनित रोग

1. पर्ण कुंचन रोग : यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरु में पौधों का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छा नुमा हो जाती है तथा पतियों का आकार छोटा हो जाता है। पतियों का उपरी सिरा अन्दर की ओर मुड़ जाता है। प्रभावित पौधों में फूल एवं फल नही लगते है।

2. पपीते का रिंग स्पॉट रोग : पर्ण कुंचन की तरह यह भी एक विषाणु रोग है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी-फटी सी हो जाती है तथा हर गाँठ पर कटे-फटे पत्ते निकलने लगते है। पतियो के तनों एवं फलों पर छोटे गोलाकार धब्बे पड़ जाते है। प्रभावित फल का आकार अच्छा नही होता है तथा फलत बहुत ही कम हो जाती है। फल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

उपरोक्त दोनो विषाणु रोगों का पूरी तरह रोकथाम संभव नही है। विषाणु रोग वर्षा के दिनो में काफी तेजी से फैलता है। अत: वर्षा के समाप्त होने पर (अक्टूबर माह) खेत में पपीता लगाने से विषाणु रोगों का प्रभाव कम होता है। यह विषाणु रोग कीटों जैसे स्फेद मक्खी और माहू से फैलते है । अत: इनकी रोकथाम हेतु डाइमेथोऐट (2 मिली. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव प्रति माह करना चाहिए। प्रयोगों द्वारा ऐसा देखा गया है कि नीम की खली या अत्यधिक कम्पोस्ट खाद के उपयोग करने पर विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। इस रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

कीट : पपीते में कीट बहुत कम लगते है। इसमें मुख्य रुप से माहू है जो पत्तियो के निचले भाग मे छेद कर रस चूसता है तथा विषाणु रोगों के फैलाने में वाहक के रुप में कार्य करता है। इसके नियंत्रण के लिए डाइमेथोऐट (2 मिली0 प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

❑

अध्याय 9

अनानास की वैज्ञानिक खेती

संत लाल प्रसाद
जिला कृषि पदाधिकारी, किशनगंज (बिहार)

अनानास एक व्यवसायिक एवं स्वास्थ वर्धक फल है जो सुपाच्य एवं विटामिन युक्त ए०, बी० सी०, कैल्सियम, मैग्नीशियम, पोटाशीयम एवं लौह युक्त फल है। इस फल से रस (जूस), डिब्बा बन्द मोरब्बा, जैम, शरबत, रंग, दवाई एवं सीरप तैयार किया जाता है। अनानास एक रसीला एवं स्वादिष्ट फल होने के कारण इसकी मांग देश एवं विदेशों के बाजारों में सालों भर रहता है तथा भारत में कुछ गिने चुने राज्यों यथा असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, पश्चिम बंगाल के अलावा बिहार राज्य के एक मात्र किशनगंज जिला के ठाकुरगंज एवं पोठिया प्रखंडों में इसकी व्यवसायिक खेती की जाती है। किशनगंज जिले के मिट्टी एवं जलवायु अनानास की खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त है। तथा यहां राज्य के अन्य जिलों के अपेक्षा तापमान न्युनतम एवं वर्षापात अधिकतम है जो अनानास की खेती के लिए सर्वोत्तम माना जाता हैं वर्तमान में जिले के ठाकुरगंज एवं पोठिया प्रखंडों में इस फसल की खेती नगदी फसल के रूप में की जा रही है। ठाकुरगंज एवं पोठिया प्रखंड पश्चिम बंगाल से सटे होने के कारण अनानास की खेती में उपयोग होने वाले उपादानों की पूर्ति आसानी से हो जाती है। इसका विस्तार जिले के अन्य प्रखंडों में भी सफलता पूर्वक की जा सकती है, जिससे ना केवल किसानों की आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण खासकर नगदी फसल के रूप में अनानास की खेती को बढ़ावा देने से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

अनानास की खेती के लिए सर्वोत्तम जलवायु उसे माना जाता है। जहाँ की तापमान 20 डिग्री से० से 35 डिग्री से० तक रहता है। दिन और रात के तापमान में काम-से-कम 4 डिग्री सेल्सीयस का अन्तर आवश्यक समझा जाता है। इसके साथ-साथ वार्षिक वर्षापात 100 से 150 सेंटीमीटर उपयुक्त माना जाता है। इस तरह नमी युक्त उष्ण कटिबंधिय वर्षा क्षेत्र को अनानास की खेती के लिए उपयुक्त माना जाता है।

भूमि का चयन : अनानास की खेती बलुआही दोमट मिट्टी जिसका pH 5.0-6.0 हो उपयुक्त माना जाता है।

भूमि की तैयारी : डिस्क हैरो से दो जुताई एवं कल्टीवेटर से दो जुताई जनवरी माह में एवं देशी हल से दो जुताई फरवरी के प्रथम सप्ताह में की जाती है। जुताई पश्चात् समतलीकरण कर खेत को तैयार कर दिया जाता है।

मिट्टी उपचार : दूसरी एवं तीसरी जुताई के समय 40 किलो, प्रति एकड़ की दर से चूना एवं 3 से 4 किलो० फियूराडॉन या फौरेट का प्रयोग करना आवश्यक है। जस्ता की कमी को पूरा करने के लिए अन्तिम जुताई के समय 10 किलोग्राम जिंक सल्फेट एवं 4 किलोग्राम बोरोन का प्रयोग करना आवश्यक है। कम्पोस्ट प्रति एकड़ 120 क्वींटल का उपयोग किया जाना उत्तम है।

प्रभेद : जार्दल कयु कॉपन क्वीन, जलयुप, लखत, बरूर्दपुर, हरियाणविटा, रेडस्केनीस।

किशनगंज जिले में मुख्य रूप से जाईटक्यू एवं क्वीन प्रभेदों का उत्पाद किया जाता है।

बीज : अनानास की खेती के लिए बीज के रूप में मुख्य रूप से पौधे का साईड पुत्तल (सकर) गुटी पुत्तल (स्लिप) एवं क्राउन का उपयोग होता है। समय एवं उत्पादन की दृष्टि से साईड पुत्तल एवं गुअी पुत्तल को श्रेष्ट माना जाता है।

बीज उपचार : बीजोपचार के लिए मुख्य रूप से सेरासेन घोल 4 ग्राम प्रति लिटर या थिरम 2 मिलीलिटर प्रति लिटर पानी के घोल का उपयोग किया जाता है।

रोपाई का समय : किशनगंज जिले में इसकी रोपाई फूल आने के 12 से 15 माह पूर्व की जाती है जो मुख्य रूप से दिसम्बर से अप्रैल तक होती है। परन्तु सालों भर उत्पादन के लिए इसकी रोपाई जून, जुलाई और अक्टूबर, नवम्बर में भी की जाती है। इसमें मुख्य रूप से फूल आने का समय जनवरी से मार्च होता है।

बीज आवश्यकता : प्रति एकड़ 12 हजार से 14 हजार रुपये।

रोपाई : बीज का रोपन दोहरी कतार में की जाती है। जिसमें पौधे की बीज की दूरी 45 सेंटीमीटर एवं कतार से कतार की दूरी 90 सेंटीमीटर होती है। जिसमें 22 सेंटीमीटर गहरा एवं 30 सेंटीमीटर व्यास का गड्ढा किया जाता है।

पोषण : रोपाई के पूर्व प्रति गड्ढा 1 किलो सड़ा हुआ कम्पोस्ट 2-3, ग्राम फास्फेट एवं 6 ग्राम पोटाश डालकर स्वस्थ पुत्तल की रोपाइ की जाती है।

खरपतवार नियंत्रण : रोपाई के 40-45 दिन पश्चात् प्रथम निकाई गुड़ाई 80-90 दिनों के पश्चात् दूसरी 110-120 दिनों के पश्चात्, तीसदी 200-210 दिनों के पश्चात्, चौथी 300-310 दिनों पश्चात् पांचवी व अन्तिम निकाई कर अनावश्यक खरपतवारों को निर्यंत्रित किया जाता है।

रासायनिक उर्वरक का व्यवहार : प्रथम निकाई गुड़ाई के पश्चात् प्रति पौधा 2 ग्राम नेत्रजन का उपयोग किया जाता है। दूसरे निकाई-गुड़ाई के तुरंत बाद 2 ग्राम नेत्रजन एवं 6 ग्राम पोटाश प्रति पौधा का व्यवहार कर पौधों के जड़ों पर मिट्टी चढ़ा दिया जाता है। इसके पश्चात् दो निकाई गुड़ाई के बाद प्रति पौधा 2.5 ग्राम नेत्रजन का उपयोग किया जाता है एवं अन्तिम निकाई गुड़ाई के बाद 3 ग्राम नेत्रजन का उपयोग किया जाना श्रेष्टकर होता है।

कीट प्रबंधन : आवश्यकता अनुसार 2-3 बार मोनोक्रोटोफोस 2 मिलीलिटर प्रतिलिटर पानी में घोलकर किया जाता हे।

सिंचाई : आवश्यकता अनुसार

हार्मोन का व्यवहार : सालोभर उत्पादन प्राप्त करने के लिए पौधों में 50 मिलीलिटर कैल्शियम कारबाईड का घोल प्रति पौधा या 20 ग्राम प्रति लिटर पानी में घोल अथवा 0.25 मिलीलिटर इथरेल प्रति पौधा का छिड़काव किया जाता है। फूल आने के 2 माह बाद ए.ए.ए. प्लानोंफिक्स और सेलेमोन 200-300 पी.पी.एम. का प्रयोग फल में उत्तम वृद्धि लाता है जो कि 15-20 प्रतिशत आंका गया है।

कृषि लागत : प्रति पौधा 8-10 रु० एवं प्रति एकड़ लगभग 96 हजार से 1 लाख 20 हजार रु० तक आता है।

फल परिपक्व अवधि : पोधरोपण के 12 से 15 माह बाद अनानास के पौधों में फूल आता है तथा 15 से 18 माह बाद अनानास का फल परिपक्व हो जाता है। यह अवधि फल के प्रभेदों पर भी निर्भर करता है।

d"k.k fØ;k;

feVVh p<kuk : पौधों को मजबूत खड़ा रहने की दृष्टि से समय–समय पर मिट्टी चढ़ा दी जानी चाहिए जिससे पौध सीधा खड़ा रहे इसके अतिरिक्त जड़ें उथली होने के कारण वर्षा के दौरान पौधे झुके नहीं तथा वृद्धि प्रभावित न हो।

[kj&irokj fu;=.k : अच्छा है अनानाश की हाथ से गुड़ाई कर मिट्टी चढ़ाते समय खरपतवार निकाल दिए जाएं ताकि दोनों कार्य एक साथ हो जाए वैसे रसायनिक विधि से खरपतवार/नियंत्रण के लिए ब्रोमेसिल + डाईफ्यूरान प्रत्येक 2 किग्रा0/हे0 की दर से खरपतवार जमने के पूर्व आधी मात्रा एवं आधी मात्रा पहले प्रयोग 5 माह बाद प्रयोग किया जाए तो खरपतवारों पर पूरा नियंत्रण किया जा सकत है।

efYpx : अनानाश की फसल में मल्चिंग का महत्व स्पष्ट देखा गया है। मल्चिंग के रूप में काली पालीथीन एवं बुरादा का प्रभाव सफेद पालीथिन एवं पुआल की मल्चिंग से ज्यादा अच्छा पाया गया है। मल्चिंग भूमि में नमी के संरक्षण के लिए आवश्यक होता है।

l dl] fLyIl ,o Økmu dk fudkyuk : निकलते समय सकर्स वृद्धि करते हैं जबकि फलों के विकास के समय स्लिप्स वृद्धि करते हैं। फलों के वृद्धि के समय स्किप्स के विकास से फलों की परिवक्ता में देरी होती है। इसलिए यथासमय सकर्स एवं स्लिप्स को मुख्य पौधे से हटाते रहना चाहिए।

fl pkbl : वैसे तो अनानाश की खेती प्रायः असिंचित क्षेत्रों में की जाती है। किन्तु सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था होने पर फलों का विकास एवं गुणवत्ता में वृद्धि पायी गयी है।

Iyk.V xkFk jxyVl dk iHkko : एन0ए0ए0 आधारित प्लाण्ट ग्रोथ रेगुलेटर्स जैसे प्लेनोफिक्स तथ सेलीमोन **10-20** पीपीएम की दर से पुष्पन एवं फलत वर्ग बढ़ाता है। कुछ ग्रोथ रेगुलेटर्स फल को पकाने के लिए इथरेल आदि का प्रयोग भी किया जात है।

Qly rMkbl : अनानाश की फसल में पुष्पन रोपाई के 10–12 माह के बाद प्रारम्भ हो जाती है तथ फल तैयार होने तक 15–18 माह का समय लग जाता है। इसकी कटाई प्रायः मई से अगस्त माह में की जाती है। फल के रोग में परिवर्तन आना इसकी तुड़ाई का संकट होता है जब फल का रंग हरे से लाल होने लगता है। व्यवसायिक दृष्टि से अनानास की खेती उन्नति खेती अधिक लाभदायक है अतः यह आवश्यक है कि बिहार ऐसे क्षेत्र में किसानों की आमदनी के लिए अनानास की खेती काफी लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

❑

राज्य की कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित सब्जियों एवं फलों की उन्नत किस्में

क्र.सं.	फसल	विकसित किस्म का नाम (उपज क्षमता) क्विंटल/हे.)
1.	**सब्जियाँ**	
	(क) बैंगन	राजेन्द्र अन्नपूर्ण (275), राजेन्द्र बैंगन-2 (250)
	(ख) कद्दू	सबौर चमत्कार (175)
	(ग) नेनुआ	राजेन्द्र नेनुआ-1 (270)
	(घ) परवल	राजेन्द्र परवल-1 (172), राजेन्द्र परवल-2 (160)
	(ङ) भिण्डी	बी.बी.एन.-57
2.	**फल**	
	(क) आम	जवाहर, महमूद बहार, प्रभा शंकर, सुंदर, लंगड़ा, अल्फान्जो, सबरी, मेनका
	(ख) लीची	सबौर मधु
	(ग) सपोटा	राजेन्द्र सपोटा-1
	(घ) जामुन	राजेन्द्र जामुन-1

अध्याय 10

कटहल की वैज्ञानिक खेती

डा० पवन कुमार
उद्यान विभाग (फल)
बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर, भागलपुर

कटहल भारत का एक महत्वपूर्ण फल है। इसकी बागवानी बिना किसी विशेष देखभाल के की जा सकती है। कटहल के कच्चे एवं पके दोनों प्रकार के फलों की उपयोगिता है। सब्जियों में कटहल का काफी महत्वपूर्ण स्थान है। कच्चे फलों का आचार भी बनाया जाता है और पका फल खाया जाता है। इसकी सर्वाधिक खेती असम में होती है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और दक्षिण भारत के राज्यों में भी इसकी बागवानी बड़े पैमाने पर की जाती है। छोटानागपुर एवं संथाल परगना का यह प्रमुख फल माना जाता है। कटहल का उद्‌गम स्थान भारतवर्ष ही है।

मिट्‌टी एवं जलवायु : इसकी खेती सभी प्रकार की मिट्‌टी में की जा सकती है लेकिन गहरी दोमट तथा बलुई दोमट मिट्‌टी इसकी बागवानी के लिए सबसे उपयुक्त है। इसके लिए जल विकास का अच्छा प्रबंध होना आवश्यक है क्योंकि इनकी जड़े भूमि में अधिक पानी के जमाव को सहन नहीं कर सकती जिसके फलस्वरूप जल स्तर उपर उठने पर पौधे सूखने लगते हैं।

कटहल उष्ण कटिबंधीय फल है। इसे शुष्क तथा नम दोनों प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है। इसकी बागवानी मैदानी भागों से लेकर समुद्र तल से लगभग 1000 मी० ऊँचाई तक पहाड़ों पर की जा सकती है।

किस्में : कटहल का प्रसार अधिकतर बीज से होता है। अत: एक ही किस्म के बीज द्वारा तैयार पौधों में भिन्नता पायी जाती है। इसकी प्रमुख किस्में रसदार, खजवा, सिंगापुरी, गुलाबी, रूद्राक्षी आदि हैं। सिंगापुरी किस्म एक जल फल देने वाली किस्म है तथा गुणें में फल मध्यम श्रेणी के होते हैं। इसके अलावे कहीं-कहीं बारहमासी किस्में भी उगायी जाती हैं।

प्रसारण : इसका प्रसारण अधिकतर बीज द्वारा किया जाता है। इसका प्रसारण इनार्चिंग और गूटी द्वारा भी सफल पाया गया है। बड़े आकार एवं उत्तम किस्म के कटहल से बीज का चुनाव करना चाहिए। बीज को पके फल से निकलने के बाद ताजा ही बोना चाहिए।

पौधा लगाना : भूमि की अच्छी तरह से जताई करने के बाद पाटा चलाकर भूमि को समतल बना लेना चाहिए। इसके बाद 10 से 12 मीटर की दूरी पर 1 मीटर व्यास एवं उतनी ही गहराई का गड्‌ढा तैयार करना चाहिए। इन गड्‌ढों में 20 से 25 किग्रा० गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट, 250 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट, 500 म्यूरियेट ऑफ पोटाश, 1 किलो नीम की खल्ली तथा 10 ग्राम थाइमेट को मिट्‌टी में अच्छी प्रकार मिलाकर भर देना चाहिए। रोपाई के लिए उपयुक्त समय जुलाई से सितम्बर है।

सिंचाई : नवजात पौधों को कुछ दिन तक बराबर पानी देते रहें। पौधा लगाने के बाद प्रार्रभिक वर्ष में पौधों की गर्मियों में प्रति सप्ताह और जाड़े में 15 दिनों के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। बड़े पेड़ों की

गर्मी में 15 दिन और जाड़े में एक महीने के अंतर से सिंचाई करनी चाहिए। नवम्बर-दिसम्बर माह में फूल आते हैं। इसलिए इस अवधि में सिंचाई नहीं करना चाहिए।

निकाई-गुड़ाई : निकाई-गुड़ाई करके पौधे के थाले साफ रखने चाहिए। बड़े पेड़ों के बागों की वर्ष में दो बार जुताई करनी चाहिए। कटहल के बाग में बरसात आदि में पानी बिल्कुल नहीं जमना चाहिए।

अन्तर्फसल : शुरू के कुछ वर्षों तक पौधों के बीच काफी जगह खाली पड़ी रहती है। इसके बीच दलहनी फसलें अथवा सब्जी वाली फसलें तथा फलों में पपीता, अन्नास व फालसा भी लगाया जा सकता है। बड़े पेड़ हो जाने पर भी इनके बीच अदरख और हल्दी की खेती अर्न्तफसल के रूप में की जा सकती है।

उपज : पेड़ का 12 वर्ष की उम्र तक फलन कम होता है। इसके बाद प्रति पेड़ 100-250 तक फल प्राप्त होते हैं।

कीट एवं रोग : कटहल में कीट एवं रोग का प्रकोप बहुत कम होता है। इसमें लगने वाले प्रमुख रोग फल गलन है। यह रोग 'राइजोपस आर्टोकारपाई नामक कवक के कारण होता है। इसका प्रकोप फल की छोटी अवस्था में होता है। इसके कारण कटहल के फल सड़कर गिरने लगते हैं इस बीमारी की रोकथाम के लिए डाइथेन एम-45 के 2 ग्राम प्रति लीटर में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करना चाहिए। कीटों में मिली बग एवं तना छेदक प्रमुख हैं।

मिली बग : ये नये फूल-फल एवं डंठलों का रस चूसते हैं फलस्वरूप फूल एवं फल गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए मई-जून में बगीचे की जुताई कर देनी चाहिए। इसके उपचार के लिए 3 मिली० इण्डोसल्फान प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

तना छेदक : ये वृक्ष के तने को छेदकर सुरंग बना देते हैं और अंदर के जीवित भाग को खाते हैं। इसका आक्रमण अधिक होने पर पेड़ की डालियाँ एवं तना सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए वृक्ष के तना एवं डाली पर जहाँ छेद नजर आये उसे किरासन तेल में रूई भिंगोकर भर दें और छेद के मुँह को मिट्टी से भर दें।

❑

जे धरि जोते, तोड़-मारोड़।
तो वह डारे, कोठला कोड़॥

जो धरती को अच्छी तरह से जोतता है। उसकी मिट्टी फोड़ता है, तो उस खेत से इतना अनाज उपजेगा कि अनाज रखने के लिए काठी को फोड़ना पड़ेगा।

थोड़ जोताई, बहुत हेंगाई, ऊँची बाँधे आरी।
उपजै तो उपजै नहीं, घाघ को देवै गारी॥

खेत की जोताई कम भी हो तो चल सकता है। लेकिन उसकी हेंगाई, अर्थात खेत में मिट्टी के ढेले को अच्छी तरह फोड़ कर, मिट्टी को समतल करना जरूरी है। खेत की मेड़ यदि ऊँची बंधी हो तो अक्ष्छी फसल होने से कोई नहीं रोक सकता है।

अध्याय 11

बेल की वैज्ञानिक खेती

शुष्क क्षेत्रों में फलोत्पादन की सबसे बड़ी समस्या जल की कमी है। ऐसी दशा में वार्षिक फसलों की तुलना मे ंफल वृक्ष को कम जल की आवश्यकता होती है। कम सिंचित क्षेत्रों में बेल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। आज के संदर्भ में जब भारतीय जनता औषधीय फलों के प्रति अधिक जागरूक हो गयी है तथा बेल के फलों के लिए अधिक मूल्य देने को तैयार है, इसकी बागवानी अधिक लाभप्रद हो गयी है। अतः इसकी बागवानी को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

Hkfe % बेल एक बहुत ही सहनशील वृक्ष है। इसे किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है, परन्तु जल निकासयुक्त बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त है। समस्याग्रस्त क्षेत्रों–ऊसर, बंजर, कंकरीली, खादर, बीहड़ भूमि में भी इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। वैसे तो बेल की खेती के लिए 6–8 पी–एच मान वाली भूमि अधिक उपयुक्त होती है। भूमि में पी–एच मान 8.5 बेल की व्यावसायिक खेती की जा सकती है।

tyok;q % बेल एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है, फिर भी इसे उष्ण, शुष्क और अर्द्धशुष्क जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगया जा सकता है। इसकी बागवानी 1200 मीटर ऊंचाई तक और 7–46 डिग्री सेल्सियस तापक्रम तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके पेड़ की टहनियों पर कांटे पाये जाते हैं और मई–जून की गर्मी के समय इसकी पत्तियां झड़ जाती है, जिससे पौधों में शुष्क और अर्द्धशुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

mUur fdLe % बेल में अत्यंत जैवविधिता पाई जाती है तथा इसके आंकलन की आवश्यकता है। नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय और गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय द्वारा चयनित किस्मों के कारण पूर्व में विकसित किस्मों, जैसे–सिवान, देवरिया, बड़ा कागजी, इटावा, चकिया, मिर्जापुरी, कागजी गोण्डा आदि के रोपण की सिफारिश अब नहीं की जा रही है। कुछ प्रमुख नवीनतम उन्नत किस्मों का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

ujUæ cy 5 % इस किस्म के पौधे कम ऊंचाई वाले (3–5 मी.) और अधिक फैलाव लिये होते हैं। फल चपटे सिरे वाले, मध्यम आकार के, मीठे स्वाद होते हैं। फलों का औसत वजन 1–1.5 किलोग्राम तक होता है तथा फलों का छिलका पतला होता है। गूदे में रेशे और बीज की मात्रा काफी कम पायी जाती है। पेड़ों से औसत उपज 70–80 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक प्राप्त की जाती है।

ir f'kokuh % इस किस्म के पेड़ ऊपर की तरफ बढ़ने वाले और अधिक फैलाव लिये जाते हैं। फल चपटे सिरे वाले, मध्यम आकार के, मीठे स्वाद होते हैं। फल अंडाकार लम्बे, औसत वजन 1.2–2. 0 किलोग्राम छिलका मध्यम पतला, गूदा अधिक (70–75 प्रतिशत), रेशा कम, अच्छी मिठास वाला और स्वादिष्ट होता है। फलों की भंडारण क्षमता अच्छी होती है तथा पेडों की औसत उपज 50–60 किलोग्राम वृक्ष तक पायी जाती है।

ir vi.kk % यह एक बौनी और विरल वाली किस्म है, जिसकी शाखाएं नीचे की तरफ लटकती रहती है। पत्तियां बड़ी, गहरे रंग की और नाशपाती की तरह होती है। पेड़ों पर कांटे कम पाये जाते हैं तथा फल जल्दी और उपज अच्छी होती है। फल गोलाकार और 0.6 से 0.8 किलोग्राम औसत भार के

और पतले छिलके वाले होते है। पकने पर फलों का रंग हल्का होता है। इसमें बीज, लिसलिसा पदार्थ, खटास व रेशा कम पाया जाता है। लिसलिसा पदार्थ व बीज अलग थैलियों में बंद होता है, जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है। अतः यह किस्म परिरक्षण के लिए ज्यादा उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। फलों का गूदा मध्यम मीठा(टी.एस.एस. 35–40ब्रिक्स), स्वादिष्ट और सुवासयुक्त होता है।

ir mo'kh % इस किस्म के पेड़ घने और लम्बे होते हैं। यह एक मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फलों का आकार अंडाकार तथा प्रति फल भार 1.6 किलोग्राम तक होता है। छिलका मध्यम पतला, गूदा मीठा स्वादिष्ट और सुवासयुक्त होता है। फलों में गूदे की मात्रा 68.5 प्रतिशत और रेशे की मात्रा कम पायी जाती है।

ir lrtkrk % इस किस्म के पेड़ मध्यम आकार के घने और फैलने वाले होते हैं। यह शीघ्र फल देने वाली और मध्यम समय में पकने वाली किस्म है। फल गोल लेकिन दोनों सिरे चपटे होते हैं। फलों का औसत भार 1.14 किलोग्राम छिलका पतला और हल्के पीले रंग वाला, रेशा कम होता है। फलों में गूदे की मात्रा 77.8 प्रतिशत तक पायी जाती है। पेड़ों की औसत उपज 45–50 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक पायी जाती है।

lh-vkbZ-,l-,p-ch-1 % इस किस्म के पौधे मध्यम ऊंचाई वाले कम फैलाव लिये होते हैं। फल, आकार में अंडाकार, लम्बाई 15–17 सेमी और व्यास 39–41 सेमी तथा अधिक मिठासयुक्त होते हैं। फलों का औसत वजन (0.8–1.12) तक पाया जाता है। फलों का छिलका पतला (0.10–0.12से.मी.) होता है। फलों में रेशे और बीज की मात्रा कम पायी जाती है और औसत उपज 50–60 किलोग्राम प्रति वृक्ष तक हो जाती है।

lh-vkbZ-,l-,p- ch- 2 % इस किस्म के पौधे कम ऊंचाई वाले और कम फैलाव लिये होते हैं। फल, आकार में बड़े, लम्बाई तक पाया जाता है। फल अधिक मिठासयुक्त और पतले छिलके वाले होते हैं। फलों में रेशा और बीज की मात्रा काफी कम होती है। इस किस्म के पौधों की उपज 40–50 किलोग्राम वृक्ष तक पायी जाती है।

io)hu % बेल के पौधे मुख्य रूप से बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं। बीजों की बुआई फलों से निकालने के तुरंत बाद 15–20 से.मी. ऊंचाई वाली 1.10 मीटर की बनी बीज शैय्या (सीड बैड) में 1–2 से.मी. की गहराई पर कर देनी चाहिए। बुआई का उत्तम समय–मई–जून होता है। व्यावसायिक स्तर पर बेल की खेती के लिए पौधों को चश्मा विधि से तैयार करना चाहिए। चश्मा की विभिन्न विधियों में पैबंदी चश्मा विधि जून–जुलाई में चढ़ाने से 80–90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है और सांकुर शाख की वृद्धि भी अच्छी होती है। कालिका को 1–2 वर्ष पुराने बेल के बीजू पौधे पर ध्रुवता को ध्यान मे रखते हुए चढ़ाना चाहिए। जब कालिका ठीक प्रकार से फुटाव ले ले तो मूलवृंत को कालिका के ऊपर से काट देना चाहिए। पॉली और नेट हाऊस की सहायता से कोमल शाखाओं का चयन करते है। इस विधि में क्लेफ्ट या वेज विधि से ग्राफ्टिंग करके 80–90 प्रतिशत तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस विधि से सफलता प्राप्त करने के लिए पॉली हाऊस में 28.2 डिग्री सेल्सियस तापमान, 70–75 प्रतिशत आर्द्रता और फुहारे का अंतराल रखना उचित है।

xM<s dh r;kjh rFkk ikS/k jki.k % बेल के पेड़ों की रोपाई 6–8 मीटर की दूरी पर मृदा उर्वरता के अनुसार करनी चाहिए। रोपण के लिए जुलाई–अगस्त अच्छा पाया गया है। पौध लगाने के एक माह पूर्व 6–8 मीटर के अंतर पर 75 से 100 घन सेंटीमीटर के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। यदि जमीन में कंकड़ की तह हो तो उसे निकाल देना चाहिए। इन गड्ढों को 20–30 दिनों तक खुला छोड़कर 3–4 टोकरी गोबर की सड़ी खाद गड्ढे की ऊपरी आधी मिट्टी में मिलाना चाहिए। ऊसर भूमि में प्रति गड्ढे के हिसाब से 20–25 किलोग्राम बालू तथा पी–एच मान के अनुसार 5–8 किलोग्राम जिप्सम/पाइराइट भी मिला कर 6–8 इंच ऊंचाई तक गड्ढों को भर देना चाहिए। इन्हीं तैयार गड्ढों में

जुलाई–अगस्त में पौध रोपण करना चाहिए। पौधे लगाने के बाद हल्की सिंचाई करना उपयुक्त होता है। शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जहां सिंचाई की समुचित व्यवस्था न हो वहां स्वस्थाने बाग स्थापन विधि को प्रोत्साहित करना चाहिए।

f'k[kj jki.k fofèk % यह देखा गया है कि बीजू/देशी पौधे बहुतायत में पाये जाते हैं जिनके फल छोटे आकार के और कम गुणवत्ता वाले होते हैं। ऐसे पौधों को उन्नत किस्मों में बदलने के लिए शिखर रोपण करना चाहिए। इसके लिए पेड़ की मोटी शाखाओं को जमीन से उचित ऊंचाई (2.5–3.0 मी.) पर मार्च में शिखर से काटकर उस हिस्से को गीली मिट्टी और टाट से ढक देते हैं। जब इन कटे हुए भागों से नई शाखाएं निकल कर कलम बांधने योग्य हो जाएं तो उन पर जून–जुलाई में कलिकायन कर दिया जाता है। जब कलिकाएं अच्छी तरह से फुटाव ले लेती है तो पुरानी शाखाओं को ऊपर से काट दिया जाता है। इस प्रकार के पौधों में तीसरे वर्ष से उपज प्राप्त होने लगती है।

[kkn ,oa moZjd % पौधों की अच्छी बढ़वार, अधिक फल और पेड़ों को स्वस्थ रखने के लिए प्रत्येक पौधे में 5 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस और 50 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति वर्ष प्रति वृक्ष डालनी चाहिए। खाद और उर्वरक की यह मात्रा दस वर्ष तक इसी अनुपात में बढ़ाते रहना चाहिए। इस प्रकार 10 वर्ष या उससे अधिक आयु वाले वृक्ष को 500 ग्रम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 500 ग्राम पोटाश के अतिरिक्त 50 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद डालना उत्तम होता है। ऊसर भूमि में उगाये गये पौधे में प्रायः जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अतः ऐसे पेड़ों में 250 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति पौधे के हिसाब से उर्वरकों के साथ डालना चाहिए या 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव जुलाई, अक्टूबर व दिसम्बर में करना चाहिए। खाद और उर्वरकों की पूरी मात्रा जून–जुलाई में डालनी चाहिए। जिन बागों में फलों के फटने की समस्या हो उनमें खाद और उर्वरकों के साथ 100 ग्राम/वृक्ष बोरेक्स (सुहागा) का प्रयोग करना चाहिए।

fl apkbZ % नये पौधों को स्थापित करे कि एक–दो वर्ष सिंचाई की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है। स्थापित पौधे बिना सिंचाई के भी अच्छी तरह से रह सकते हैं। गर्मियों में बेल का पौधा अपनी पत्तियां गिरा कर सुषुतावस्था में चला जाता है इसके अलावा इसमें पुष्पण तथा फल वृद्धि बरसात के मौसम से शुरू होकर जाड़े के समय तक होती है। इस तरह यह सूखे को सहन कर लेता है। सिंचाई की सुविधा होने पर मई–जून में नई पत्तियां आने के बाद दो सिंचाई 20–30 दिनों के अंतराल पर कर देनी चाहिए।

ikèkk dh lèkkbZ] NaVkbZ vkSj vUr% Qly % पौधों की सधाई, सुधरी प्ररोह विधि से करना उत्तम पाया जाता है। सधाई का कार्य शुरू के 4–5 वर्षों में करना चाहिए। मुख्य तने को 75 से.मी. तक अकेला रखना चाहिए। इसके बाद 4–6 मुख्य शाखाएं चारों दिशाओं में बढ़ने देनी चाहिए। बेल के पेड़ों में विशेष सधाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है परंतु सूखी, कीड़ों और बीमारियों से ग्रसित टहनियों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। शुरू के वर्षों में नये पौधों के बीच खाली जगह का प्रयोग अंतः फसल लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी फसलें नहीं लेनी चाहिए जिन्हें पानी की अधिक आवश्यकता हो और वह मुख्य फसल को प्रभावित करें। इसके अलावा ऊसर भूमि में लगाये गये बागों में सनई, ढैंचा की फसलें लगा कर उन्हें वर्षा ऋतु में पलट देने से भूमि की दशा में भी सुधार किया जा सकता है।

jksx vkSj dhV % jksx

cSy dk dSdj % यह रोग जैन्थोमोनस विल्वी बैक्टीरिया द्वारा होता है। प्रभावित भागों पर पानीदार धब्बे बनते हैं जो बाद में बढ़ कर भूरे रंग के हो जाते हैं। बाद में पूर्व प्रभावित भाग का ऊतक गिर जाता है और पत्तियों पर छिद्र बन जाते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन सल्फेट (200 पी पी एम) को पानी में घोल कर 15 दिनो के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

NkV Qyk dk fxjuk % इस रोग का प्रकोप फ्यूजेरियम नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग मे ंबेल के छोटे फल (2–3 इंच व्यास वाले) गिरते हैं। पहले डंठल वाले छोर पर फ्यूजेरियन फफूंद का संक्रमण होता है तथा एक भूरा छोटा घेरा फल के ऊपरी हिस्से पर विकसित होता है। डंठल और फल के बीच फफूंद विकसित होने से जुड़ाव कमजोर हो जाता है और फल गिर जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए जब फल छोटे हों, कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का दो छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

Mkb cd % इस रोग का प्रकोप लेसिया डिप्लोडिया नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग में पौधों की टहनियां ऊपर से नीचे की तरफ सूखने लगती है। टहनियों और पत्तियों पर भूरे धब्बे नजर आते हैं और पत्तियां गिर जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत)का दो छिड़काव सूखी टहनियों को छांट कर 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

Qyk dk fxjuk@vkarfjd foxyu % बेल के बड़े फल अप्रैल–मई बहुतायत में गिरते हैं। गिरे बेलों में आंतरिक विगलन के लक्षण पाये जाते हैं। साथ बाह्‌य त्वचा में फटन भी पायी जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए 300 ग्राम बोरेक्स प्रति वृक्ष का प्रयोग करना चाहिए। साथ जब फल छोटे आकार के हों तो एक प्रतिशत बोरेक्स का दो बार छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

Qyk dk lMuk % बेल के ऐसे फल जिन्हें तोड़ते समय गिरने से फलों की बाह्‌य त्वचा में हल्की फटन हो जाती है, वे फल तेजी से सड़ जाते हैं। ऐसे फलों में एस्परजिलस फफूंद फल के अन्दर विकसित होती है तथा अंदर का गूदा अधिक मुलायम तथा तीक्ष्ण गंध वाला हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए, जिससे फल जमीन पर न गिरें और फलों की त्वचा पर फटन न होने पाये साथ ही ऐसे फल मृदा के संपर्क में नहीं आने चाहिए।

ifÙk;k ij dky èkCc : बेल की पत्तियां पर दोनों सतहों पर काले धब्बे बनते हैं, जिनका आकार आमतौर पर 2.3 मि.मी. का होता है। इन धब्बों पर काली फफूंदी नजर आती है, जिसे आइसेरेआप्सिस कहते हैं। इसके रोकथाम के लिए बैविस्टीन (0.1 प्रतिशत) या डाईफोलेटान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

dhV % बेल को बहुत कम नुकसान पहुंचाते हैं। पर्ण सुरर्गी और पर्ण भक्षी झल्लीं थोड़ा नुकसान पहुंचाती है। यह पेड़ की पत्तियों को काटकर नुकसान पहुंचाती है। इन कीटों की रोकथाम के लिए (0.1 प्रतिशत) या थायोडॉन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव सप्ताह के अंतराल पर करना चाहिए।

Qyk dh rqMkb vkj mit % फल अप्रैल–मई में तोड़ने योग्य हो जाते हैं। जब फलों का रंग गहरे हरे रंग से बदल कर पीला हरा होने लगे तो फलों की तुड़ाई 2 से.मी. डंठल के साथ करनी चाहिए। तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फल जमीन पर न गिरने पायें। इससे फलों की त्वचा चटक जाती है, जिससे भंडारण के समय चटके हुए भाग से सड़न चटके हुए भाग से सड़न आरंभ हो जाती है।

कलमी पौधों में 3–4 वर्षों में फल प्रारंभ हो जाती है, जबकि बीजू पेड़ 7–8 वर्ष में फल देते हैं। प्रति वृक्ष फलों की संख्या वृक्ष के आकार के साथ बढ़ती रहती है। 10–15 वर्ष के पूर्ण विकसित वृक्ष से 100–150 फल प्राप्त किये जा सकते हैं।

❑

अध्याय 12

आलू की वैज्ञानिक खेती

डा० गोकुलेश झा
सेवा निवृत वरीय वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
तिरहुत कृषि महाविद्यालय, ढ़ोली, मुजफ्फरपुर

परिचय : आलू एक अर्द्धसड़नशील सब्जी वाली फसल है। इसकी खेती रबी मौसम या शरद्ऋतु में की जाती है। इसकी उपज क्षमता समय के अनुसार सभी फसलों से ज्यादा है इसलिए इसको अकाल नाशक फसल भी कहते हैं। इसका प्रत्येक कन्द पोषक तत्वों का भण्डार है जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के शरीर का पोषण करता है। अब तो आलू एक उत्तम पोष्टिक आहार के रूप में व्यवहार होने लगा है। बढ़ती आबादी के कुपोषण एवं भूखमरी से बचाने में एक मात्र यही फसल मदद्गार है।

खेत का चयन : उपर वाली भीठ जमीन जो जल जमाव एवं उसर से रहित हो तथा जहाँ सिंचाई की सुविधा सुनिश्चित हो वह खेत आलू की खेती के लिए उपयुक्त है। खरीफ मक्का एवं अगात धान से खाली किए गए खेत में भी इसकी खेती की जाती है।

खेत की जुताई : ट्रैक्टर चालित मिट्टी पलटने वाले डिस्क प्लाउ या एम0बी0 प्लाउ से एक जुताई करने के बाद डिस्क हैरो 12 तबा से दो चास (एक बार) करने के बाद कल्टीवेटर यानी नौफारा से दो चास (एक बार) करने के बाद खेत आलू की रोपनी योग्य तैयार हो जाता है। प्रत्येक जुताई में दो दिनों का अन्तर रखने से खर-पतवार में कमी आती है तथा मिट्टी पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक जुताई के बाद हेंगा तथा खर-पतवार निकालने की व्यवस्था की जाती है। ऐसा करने से खेत की नमी बनी रहेगी तथा खेत खर-पतवार से मुक्त हो जायेगा।

खर-पतवार से मुक्ति के लिए जुताई से एक सप्ताह पूर्व राउन्ड अप नामक तृणनाशी दवा जिसमें ग्लायफोसेट नामक रसायन (42 प्रतिशत) पाया जाता है उसका प्रति लीटर पानी में 2.5 (अढ़ाई) मिली लीटर दवा का घोल बनाकर छिड़काव करने से फसल लगने के बाद खर-पतवार में काफी कमी हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक : आलू बहुत खाद खाने वाली फसल है। यह मिट्टी के उपरी सतह से ही भोजन प्राप्त करती है। इसलिए इसे प्रचुर मात्रा में जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है।

इसमें सड़े गोबर की खाद 200 क्विं0 तथा 5 क्विं0 खल्ली प्रति हे. की दर से डाला जाता है। खल्ली में अण्डी, सरसों, नीम एवं करंज जो भी आसानी से मिल जाय उसका व्यवहार करे। ऐसा करने से मिट्टी की उर्वराशक्ति हमेशा कायम रहती है तथा रासायनिक उर्वरक पौधों को आवश्यकतानुसार सही समय पर मिलता रहता है।

रासायनिक उर्वरकों में 150 किलोग्राम नेत्रजन 330 किलोग्राम यूरिया के रूप में प्रति हे. की दर से डाला जाता है। यूरिया की आधी मात्रा यानी 165 किलोग्राम रोपनी के समय तथा शेष 165 किलोग्राम रोपनी के 30 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने के समय डाला जाता है। 90 किलोग्राम स्फुर तथा 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हे. की दर से डाला जाता है। स्फुर के लिए डी0ए0पी या सिंगल सुपर फास्फेट दोनों में से किसी एक ही

खाद का प्रयोग करें। डी0 ए0 पी0 की मात्रा 200 किलोग्राम प्रति हे. तथा सिंगल सुपर फास्फेट की मात्रा 560 किलोग्राम प्रति हे. तथा पोटाश के लिए 170 किलोग्राम म्युरिएट ऑफ पोटाश प्रति हे. की दर से व्यवहार करें।

सभी उर्वरकों को एक साथ मिलाकर अन्तिम जुलाई के पहले खेत में छींट कर जुताई के बाद पाटा देकर मिट्टी में मिला दिया जाता है।

रोपनी के समय आलू की पंक्तियों में खाद डालना अधिक लाभकर है परन्तु ध्यान रहे उर्वरक एवं आलू के कन्द में सीधा सम्पर्क न हो नहीं तो कन्द सड़ सकता है। इसलिए व्हील हो या लहसूनिया हल से नाला बनाकर उसी में खाद डालें। खाद की नाली से 5 से 10 से.मी. की दूरी पर दूसरी नाली में आलू का कन्द डालें।

यदि पोटेटो प्लान्टर उपलब्ध हो तो उसके अनुसार उर्वरक प्रयोग में परिवर्तन किया जा सकता है।

रोपनी का समय : हस्त नक्षत्र के बाद एवं दीपावली के दिन तक आलू रोपनी का उत्तम समय है। वैसे अक्टूबर के प्रथम सप्ताह से लेकर दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह तक आलू की रोपनी की जाती है। परन्तु अधिक उपज के लिए मुख्यकालीन रोप 5 नवम्बर से 20 नवम्बर तक पूरा कर लें।

प्रभेदों का चयन : आवश्यकता एवं इच्छा के अनुसार प्रभेदों का चयन करें। राजेन्द्र आलू -3, कुफ्री ज्योति, कुफ्री बादशाह, कुफ्री पोखराज, कुफ्री सतलज, कुफ्री आनन्द एवं कुफ्री बहार मधय अगात के लिए प्रचलित प्रभेद हैं जो 90 दिन से लेकर 105 दिनों में परिपक्व हो जाता है।

राजेन्द्र आलू -1, कुफरी सिन्दुरी एवं कुफरी लालिमा आलू के प्रचलित पिछात प्रभेद हैं जो 120 दिन से लेकर 130 दिन तक परिपक्व हो जाते है।

बीज दर : आलू का बीज दर इसके कन्द के वजन, दो पंक्तियों के बीच की दूरी तथा प्रत्येक पंक्ति में दो पौधों के बीच की दूरी पर निर्भर करता है। प्रति कन्द 10 ग्राम से 30 ग्राम तक वजन वाले आलू की रोपनी करने पर प्रति हे. 10 क्विं से लेकर 30 क्विं0 तक आलू के कन्द की आवश्यकता होती है।

बीजोपचार : शीत-भंडार से आलू निकालने के बाद उसे त्रिपाल या पक्की फर्श पर छायादार एवं हवादार जगह में फैलाकर कम से कम एक सप्ताह तक रखा जाता है। सड़े एवं कटे कन्द को प्रतिदिन निकालते रहना चाहिए। जब आलू के कन्द में अंकुरण निकलना प्रारंभ हो जाय तब रासायनिक बीजोपचार के बाद रोपनी करनी चाहिए।

रासायनिक बीजोपचार : शीत भंडार से निकाले कन्द को फफूँद एवं बैक्टिीरिया जनित छुआ-छुत रोगों से सुरक्षा के लिए फफूँदनाशक एवं एन्टिवायोटिक दवा का व्यवहार किया जाता है। इसके लिए ड्राम, बाल्टी, नाद या टीन में नाप कर पानी लिया जाता है। प्रति लीटर पानी में 5 ग्राम इमिशान-6 तथा आधाग्राम यानी 500 मिलीग्राम स्ट्रोप्टोसाइक्लिन एन्टिवायोटिक दवा का पाउडर मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। इस घोल में कन्द को 15 मिनट तक डुबाकर रखने के बाद घोल से आलू को निकाल कर त्रिपाल या खल्ली बोरा पर छायादार स्थान में फैला कर रखा जाता है ताकि कन्द की नमी कम हो जाय। घोल बहुत गंदा हो जाने पर या बहुत कम हो जाने पर उस घोल को फेंक कर फिर से पानी डालकर नया घोल तैयार कर लिया जाता है। फफूँदनाशक दवाओं में घोल तैयार करने वास्ते इमिशान-6 सस्ता पड़ता है। इसके अभाव में इन्डोफिल एम0-45, कैप्टाफ या ब्लाइटाक्स 2.5 ग्राम मात्र प्रति लीटर पानी में घोलकर घोल बनाया जा सकता है। इसका मतलब है कि रासायनिक बीजोपचार आवश्यक है। ऐसा करने से खेत में आलू की सड़न रूक जाती है तथा कन्द की अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है।

रोपने की दूरी : आलू को शुद्ध फसल के लिए दो पंक्तियों के बीच की दूरी 40 से.मी. से लेकर 600 से.मी. तक रखें परन्तु, मक्का में आलू की अन्तरवर्ती खेती के लिए दो पंक्तियों के बीच की दूरी 60 से.

मी. रखें। यदि ईंख में आलू की अन्तरवर्ती खेती करनी हो तो ईंख की दो पंक्तियों के बीच की दूरी के आधार पर ईंख को दो पंक्तियों के बीच में 40 से.मी. से लेकर 50 से.मी. की दूरी पर आलू की दो पंक्तियाँ रखें। प्रत्येक कतार में दो कन्द के बीच की दूरी 15 से.मी. से लेकर 20 से.मी. तक रखें। छोटे कन्द को 15 से. मी. की दूरी पर तथा बड़े कन्द को 20 से.मी. की दूरी पर रोपनी करें।

रोपनी की विधि : आलू रोपने के समय ही कुदाली से मिट्टी चढ़ाकर लगभग 15 से.मी. ऊँचा मेड़ बना दिया जाता है तथा उसे कुदाली से हल्का थप-थपा कर मिट्टी दबा दिया जाता है ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे तथा सिंचाई में भी सुविधा हो।

यदि सुविधा हो तो बड़े खेत में पोटेटो प्लान्टर से भी रोपनी की जाती है। इसके द्वारा समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है।

यदि आलू में मक्का लगाना चाहते है तो आलू की मेड़ के ठीक नीचे सटाकर आलू रोपनी के पाँच दिन के अन्दर खुरपी से 30 से.मी. की दूरी पर मक्का बीज की बुआई कर दें। ऐसा करने से आलू के साथ सिंचाई में भी बाधा न होगी। मक्का-आलू साथ लगाने पर मक्का के लिए पूरी खाद की मात्रा तथा आलू के लिए आधी खाद की मात्रा का प्रयोग करें। मक्का-आलू साथ लगाने पर एक ही खेत से एक ही सीजन में कम लागत में दोनों फसल की प्राप्ति हो जाती है तथा आलू का क्षेत्रफल भी बढ़ सकता है। बचे हुए खेत में दूसरी फसल लगायी जा सकती है।

सिंचाई : कहावत है-आलू एवं मक्का पानी चाटता है- पीता नही है। इसलिए इसमें एक बार में थोड़ा पानी कम अन्तराल पर देना अधिक उपज के लिए लाभदायक है। चूँकि खाद की मात्रा ज्यादा रखी जाती है इसलिए रोपनी के 10 दिन बाद परन्तु 20 दिन के अन्दर ही प्रथम सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। ऐसा करने से अंकुरण शीघ्र होगा तथा प्रति पौधा कन्द की संख्या बढ़ जाती है जिसके कारण उपज में दो गुणी वृद्धि हो जाती है। प्रथम सिंचाई समय पर करने से खेत में डाले गए खाद का उपयोग फसलों द्वारा पारम्भ से ही आवश्यकतानुसार होने लगता है। दो सिंचाई के बीच का समय खेत की मिट्टी की दशा एवं अनुभव के आधार पर घटाया बढ़ाया जा सकता है। फिर भी दो सिंचाई के बीज 20 दिन से ज्यादा अन्तर न रखें । खुदाई के 10 दिन पूर्व सिंचाई बन्द कर दें। ऐसा करने से खुदाई के समय कन्द स्वच्छ निकलेंगे। धयान रखें प्रत्येक सिंचाई में आधी नाली तक ही पानी दें ताकि शेष भाग रिसाब द्वारा नम हो जाय।

अन्तरकर्षण : प्रथम सिंचाई के बाद यानी रोपनी के 25 दिन बाद खुरपी से खर-पतवार निकाल दिया जाता है। पूरी फसल अवधि में दो बार निकाई-गुड़ाई की आवश्यकता होती है।

मिट्टी चढ़ाना : रोपनी के 30 दिन बाद दो पंक्तियों के बीच में यूरिया का शेष आधी मात्रा यानी 165 कि.ग्राम प्रति हे. की दर से डालकर कुदाली से मिट्टी बनाकर प्रत्येक पंक्ति में मिट्टी चढ़ा दिया जाता है तथा कुदाली से हल्का थप-थपाकर दवा दिया जाता है ताकि मिट्टी में पकड़ बनी रहें।

पौध संरक्षण : भूमिगत कीटों से सुरक्षा हेतु रोपनी के समय ही फोरेट-10 जी या डर्सभान 10 जी0 जिसमें क्लोरोपायरिफास नामक कीट नाशी दवा रहता है उसका 10 कि.ग्राम प्रति हे. की दर से उर्वरकों के साथ ही मिलाकर रोपनी पूर्व व्यवहार किया जाता है। ऐसा करने से धड़ छेदक कीटों से जो मिट्टी में ही दबे रहते हैं उसे सुरक्षा मिल जाती है।

पिछात झुलसा रोग से बचाव के लिए 20 दिसम्बर से लेकर 20 जनवरी तक 10 से 15 दिन के अन्तराल पर फफूँदनाशक दवा का छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव में इन्डोफिल एम-45, दूसरे छिड़काव में ब्लाइटॉक्स एवं तीसरे छिड़काव में इन्डोफिल एम-45, दूसरे छिड़काव में ब्लाइटाक्स एवं तीसरे छिड़काव में आवश्यकतानुसाार रीडोमील फफूँदनाशक दवा का 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। प्रति हेक्टेयर 2.5 कि.ग्राम दवा एवं 1000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। लगभग 60 टीन पानी प्रति हे. लग जाता है। ऐसा करने से फसल सुरक्षा बढ़ जाती है।

14 जनवरी के आस-पास लाही गिरने का समय हो जाता है। यदि लाही का प्रकोप हो तो मेटासिस्टोक्स नामक कीटनाशी दवा का प्रति लीटर पानी में एक मि.ली. दवा डालकर स्प्रे किया जाता है। दवा नापने के लिए प्लास्टिक सिरींज का व्यवहार करें। लाही नियंत्रण से आलू में कुकरी रोग यानी लीफ रोल नाम विषाणु रोग का खतरा कम हो जाता है।

देखभाल : आलू रोपनी के 60 दिन बाद प्रत्येक पंक्ति में घूमकर फसल को देखा करें। यदि आलू का कंद दिखलाई पड़े तो उसे मिट्टी से ढ़ँक दें नहीं तो उसका रंग हरा जो जायगा। तथा कन्दों का बढ़ना रूक जायगा। चूहा द्वारा क्षति का भी अंदाज लग जायगा । चूहा के आक्रमण पर प्रत्येक बिल में 10 ग्राम थीमेट नामक कीटनाशी दवा डालकर छेद को बंद कर दें। ऐसा करने से चूहा बिल में ही मर जायगा। या नहीं तो खेत छोड़कर भाग जायगा।

लत्तर काटना : यदि आलू को बीज के लिए या अधिक दिनों तक रखना हो तो परिपक्वता अवधि पूरी होने पर लत्तर काट दें। लत्तर काटने के 10 दिन बाद खुदाई करें। ऐसा करने से कन्द का छिलका मुटाता है। जिससे आलू की भण्डारण क्षमता बढ़ती है तथा सड़न में कमी आती है।

खुदाई : बाजार भाव एवं आवश्यकता को देखते हुए रोपनी के 60 दिन बाद आलू का खुदाई की जाती है। यदि भण्डारण के लिए आलू रखना हो तो कन्द की परिपक्वता की जाँच के बाद ही खुदाई करें। परिपक्वता की जाँच के लिए कन्द को हाथ में रखकर अंगूठा से दवाकर फिसलाया जाता है यदि ऐसा करने पर कन्द का छिलका अलग नहीं होता है तो समझा जाता है कि कन्द परपिक्व हो गया है। ऐसे कन्द की खुदाई करने से भंडारण के कन्द सड़ता नहीं है। खुदाई दिन के 12.00 बजे तक पूरा कर लेनी चाहिए। खुदे कन्द को खुले धुप में न रखकर छायादार जगह में रखा जाता है। धूप में रखने पर भंडारण क्षमता घट जाती है। 15 मार्च तक आलू के सभी प्रभेदों की खुदाई अवश्य पूरी कर लेनी चाहिए। खुरपी या पोटेटो डीगर से खुदाई की जाती है। खुरपी से खुदाई करने पर धयान रहे आलू कटने न पावें। कहावत है - आलू नहीं कटती है, तकदीर कट जाती है।

यदि आलू को शीत भंडार भेजना है तो कटे एवं सड़े आलू की छाँटकर खुदाई के एक सप्ताह बाद बोरा में बन्द कर भेज दें। प्रत्येक बोरा के अन्दर प्रभेद का नाम लिख दें तथा बोरा के उपर भी अपना पता लिख दें।

उपज : परिपक्वता अवधि एवं अनुशंसित फसल प्रणाली को अपनाने पर रोपनी के 60 दिन बाद 100 क्विंटल, 75 दिन बाद 200 क्विंटल, 90 दिन बाद , 300 क्विंटल तथा 105 दिन बाद प्रभेद के अनुसार 400 क्विंटल प्रति हेक्टर तक उपज प्राप्त की जाती है। परन्तु यदि प्रथम सिंचाई रोपनी के 10 दिन बाद तथा 20 दिन के अन्दर न हुआ तो उपज आधी हो जायगी।

❑

क्या होगा बहु बाहे ?
जोत न जाए थाहे।

खेत गहरा न जोता जाए तो बहुत बार जोतने से भी क्या लाभ होगा ? इसलिए गहराई से जोतना जरूरी है। अच्छी फसल के लिए खेती की हेंगाई मतलब खेती की मिट्टी फोड़ना बहुत जरूरी है।

अध्याय 13

प्याज की वैज्ञानिक खेती

डा० राजीव रंजन सिंह
सह प्राध्यापक (सब्जी), बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

प्याज ''ऐमारलीडेसी'' परिवार का सदस्य है। इसका वैज्ञानिक नाम एलियम सेपा है। अंग्रेजी में इसे ओनियन कहा जाता है। पुरे संसार में इसकी माँग है।

इसके गुण एवं उपयोग : प्याज की खेती 5 हजार वर्षों और इससे अधिक समय से होती आयी है। चूँकि प्याज में गन्धक युक्त यौगिक पाये जाते हैं इसी वजह से प्याज में गंध और तीखापन होता है।

दवा के रूप में इसके उपयोग से खून के प्लेट बनने में अवरोध पैदा होता है जिससे मनुष्य की पतली नसों में खून के प्रवाह में बाधा पैदा नहीं होती है।

1. मसाले के रूप में 2. आयुर्वेदीय औषधि में 3. भोजन स्वादिष्ट बनाने में 4. सलाद बनाने में 5. आँख की ज्योति बढ़ाने में 6. मवेशियों एवं मुर्गियों के भोजन में 7. कीटनाशक के रूप में 8. प्याज में विटामिन-सी, लोहा और चूना अधिक पाया जाता है।

इसकी खेती के लिये समशीतोष्ण और वर्षा रहित जलवायु की सर्वोत्तम होती है। प्याज के लिये शुरू में 20° सें० गर्मी और 4 से 10 घंटे की धूप लेकिन बाद में 10° सें० गर्मी तथा 12 घंटे धूप अच्छी होती है। अन्य देशों में इसकी औसत उपज 15 टन/हे० है। वर्ष 1980 से अभी तक इसकी उपज में 65.55% की वृद्धि हुई है। भारत वर्ष में औसत उपज 10.32 टन/हे० है जबकि विश्व के अन्य देशों में औसत उपज 15 टन/हे० है।

बिहार में सब्जी उत्पादन : किसी भी सब्जी के वैज्ञानिक तरीके से उत्पादन में उसके प्रभेदों का अधिक महत्व है तथा हमारी मिट्टी के लिये कौन सा अनुशंसित प्रभेद हैं इसका ध्यान रखना अधिक आवश्यक है। कुछ अनुशंसित प्रभेदों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं। ये अधिक उपज देते हैं साथ ही साथ यहाँ की जलवायु के लिये पूर्णतया उपयुक्त हैं।

भारत में प्याज के विकसित प्रभेद एवं उनकी विशेषताएँ।

प्रभेदों के नाम	विशेषताएँ
पूसा रेड	लाल रंग, गोल, उपज 20-30 टन/हे०, भंडारण में विशेष अच्छा तथा कहीं भी अपने को समायोजित करने की क्षमता।
पूसा रत्नार	गहरा लाल प्रभेद, गोलाकार बड़ा, 30-40 टन/हे० उपज क्षमता।
पूसा माधवी	हल्के लाल रंग, अच्छा भंडारण क्षमता, 30-35 टन/हेक्टेयर उपज क्षमता।
पंजाब सेलेक्शन	हल्का लाल, उपज क्षमता 20 टन/हे०, एन–53 गहरा लाल, उपज क्षमता 15-20 टन/हे०, खरीफ फसल के लिए उपयुक्त।
अरका निकेतन	हल्का लाल, उपज क्षमता 33 टन/हे०,भण्डारणकलिए उपयुक्त।
अरका कल्याण	गहरा लाल, उपज क्षमता 33 टन/हे०, भण्डारणकलिए उपयुक्त।
अरका बिन्दु	चमकीला गहरा लाल, 100 दिनों में तैयार, 25 टन/हे० निर्यात के लिए उपयुक्त।

बसवन्त 780	चमकीला लाल।
एग्री फाऊंड लाइट रेड	हल्का लाल, भंडारण में अच्छा, उपज क्षमता 30 टन/हे०।
पंजाब रेड राऊंड	लाल, उपज क्षमता 30 टन/हे०
कल्याणपुर रेड राऊंड	गहरा लाल, गोल, उपज क्षमता 30 टन/हे०
हिसार–II	हल्का लाल, उपज क्षमता 20 टन/हे०।

उजला प्रभेदों के नाम

पूसा हवाइट फ्लाइट उपजक्षमता 30-35 टन/हे०, भंडारण के लिए उपयुक्त, सगा प्याज के लिए उपयुक्त।

एन 257-9-1, गोलाकार चिपटा, उपज 25-30 टन/हे०

पीले रंग का प्रभेद

अर्ली ग्रानो	बड़ा कन्द, सलाद के लिए उपयुक्त, उपज क्षमता 50-60 टन/हे०
ब्राऊन स्पेनिश	उपज क्षमता 20-25 टन/हे०

इसके अलावे प्याज के और प्रभेद भी हैं जिसे किसान सब्जी बीज की दुकान से प्राप्त कर लगाते हैं। वे प्रभेद भी रजिस्टर्ड कम्पनी की होती है लेकिन यह उनकी विश्वसनीयता पर निर्भर करती है।

बागवानी

प्याज की बागवानी हेतु भूमि का चयन भी आवश्यक है क्योंकि कन्द का विकास भूमि की संरचना पर भी निर्भर करती है।

जीवांशयुक्त हल्की दोमट मिट्टी सबसे अच्छी है। अधिक अम्लीय मिट्टी सर्वथा अनुपयुक्त है। जमीन की जुताई अच्छी के साथ-साथ खाद एवं उर्वरक जुताई के समय डालकर अच्छी तरह मिला दिया जाय। मिलाने के बाद पाटा देना चाहिये। इससे खेत की नमी सुरक्षित रहती है तथा खाद को मिट्टी में मिलाने में आसानी होती है। भूमि की तैयारी के साथ पौधशाला की भी तैयारी उतनी ही आवश्यक है। पौधशाला की तैयारी में खास ध्यान देकर उसे खरपतवार से मुक्त कर मिट्टी को भुर-भुरी बनाये। पौधशाला में जल जमाव नहीं हो इसका विशेष ध्यान दें। पौधशाला को छोटी क्यारियों में बाँट दें। पौधशाला अपनी आवश्यकता अनुसार बनावें। साधारणतया एक हेक्टर प्याज की खेती हेतु 1/12 हे० में बीज लगाते हैं।

पौधशाला में बीज गिराने के बाद उसे पुआल आदि से ढँक देते हैं। बीचड़े को 4-5 सेमी के होने के बाद, डायथेन एम–45 का छिड़काव किया जाय ताकि सड़ने गलने से बच सके।

बीज की मात्रा : बीज की गुणवत्ता के आधार पर ही इसकी मात्रा निर्भर करती है। (क) बीज स्वस्थ हों (ख) बीज की अंकुरण क्षमता प्रमाणित हो। (ग) बीज हमेशा नामांकित जगहों से प्राप्त करें।

एक हेक्टर प्याज लगाने के लिये 10-12 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

प्याज की बुआई तीन प्रकार से की जाती है :

(क) सीधे बीज डालकर : इसे बलुआही मिट्टी में उपयोग करते हैं। इस विधि में मिट्टी को अच्छे ढंग से तैयार कर बीज खेत में छोड़ देते हैं। इस विधि में बीज की मात्रा 7-8 कि० प्रति हे० लगते हैं।

(ख) गांठों से प्याज लगाना : छोटे प्याज के गांठों को अप्रील-मई में लगायी जाती है। प्याज की 12-14 क्विंटल प्रति हे० गांठ लगते हैं।

(ग) बीज से पौध तैयार कर खेत में लगाना : यह प्रचलित विधि है जिसके द्वारा प्याज की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है।

बुआई का समय

पौधशाला में बोआई : अक्टूबर-नवम्बर

खेत में रोपाई : दिसम्बर–जनवरी

बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर के सब्जी विभाग में कुछ वर्षों के लगातार प्रयोग के आधार पर (खाद एवं उर्वरक) में निम्नलिखित तथ्य सामने आये हैं और इन तथ्यों को भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा अनुशंसित किया गया है।

सबौर क्षेत्र में प्याज के पूसा रेड प्रभेद हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15 सेंमी० तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी० रखने की अनुशंसा की गयी है।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा : कम्पोस्ट 10 टन, 150 कि० नेत्रजन, 60 कि० फास्फोरस एवं 30 कि० पोटाश प्रति हे० देने की अनुशंसा की गयी है।

नेत्रजन का प्रयोग तीन बार करें और वह भी सिंचाई के बाद। स्फूर एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयारी के समय ही दी जाय।

बरसाती प्याज की खेती

बरसाती प्याज के लिए अनुशंसित प्रभेदों में एन०–53 की खेती ज़्यादा हो रही है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

महाराष्ट्र में इसकी खेती अधिक क्षेत्र में हो रही है। मुख्य फसल से प्राप्त प्याज के गांठों को अक्टूबर–नवम्बर से आगे तक भंडारण नहीं किया जा सकता है। सभी प्राय: फूट जाती है और गाँठ खोखले हो जाते हैं। उनकी विक्री समाप्त हो जाती है।

बरसाती प्याज की खेती मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा बिहार में भी हो रही है। नेफेड के द्वारा सेट उगाकर लगाने की तकनीक भी विकसीत की गयी है जो लाभकारी है।

बीज बोने का समय – मई के अन्तिम सप्ताह से जून तक
प्रतिरोपण – अगस्त
अलगाने का समय – दिसम्बर–जनवरी

अन्य प्रभेद जिसकी खेती बरसाती प्याज के रूप में की जाती है–एग्रीफाऊड डार्करेड, बसवन्त 780, अरका कल्याण, उपज 19 – 20 टन/हे०।

बरसाती प्याज के लिए सेट तैयार करना : दिसम्बर जनवरी के माह में प्याज के बिचड़ों में छोटा गाँठ बांधने पर पौधशाला से ही उखाड़ लिये जाते हैं। इन्हें गुच्छों में बाँधकर रख देते हैं। रखने से पहले इसे धूप में सूखाते भी हैं। इन सेटों का प्रतिरोपण अगस्त माह में करते हैं। इनकी गाँठ 2 से 2.5 से० आकार की अधिक उपयुक्त है। 25 ग्राम बीज प्रतिवर्ग मी० में बोआई करें। 12-15 क्विंटल सेट्स/हेक्टेयर के लिए आवश्यक है।

सागा प्याज उगाने की तकनीक : सागा प्याज में पूरी गाँठ बनने से पहले पौधा सहित उखाड़ना ही सागा प्याज की खेती में व्यवहार करते हैं। सागा प्याज की खपत है, प्याज की तैयार फसल की तरह करते हैं। प्रयोग के आधार पर सागा प्याज की खेती के लिये अर्ली ग्रानो, पूसा ह्वाइट फ्लैट तथा पूसा ह्वाइट राऊंड उपयुक्त पाये गये हैं।

निकाई गुड़ाई एवं सिंचाई

प्याज एक ऐसी फसल है जिसमें बिचड़े की रोपनी के बाद यानि जब पौधे स्थिर हो जाते हैं तब इसमें निकौनी एवं सिंचाई की आवश्यकता पड़ती रहती है। इस फसल में अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसकी जड़ें 15-20 सेंमी० सतह पर फैलती है।

1. इसमें पाँच दिनों के अन्तराल पर सिंचाई चाहिये।
2. इस फसल में 12-14 सिंचाई देना चाहिये।
3. अधिक गहरी सिंचाई हानिकारक है।
4. पानी की कमी से खेतों में दरार न बन पाये।

आरम्भ में 10-12 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करें। पुनः गर्मी आने पर 5-7 दिनों पर सिंचाई करनी चाहिये।

हर दो-तीन सिंचाई के साथ घास-पात की निकासी आवश्यक है। इससे पौधों को उचित मात्रा में पोषक तत्व एवं प्रकाश मिलता रहता है।

खर-पतवार के नियंत्रण के लिए खर-पतवारनाशी टोक-ई-25 का छिड़काव 5 ली० प्रति हे० की दर से करना चाहिये।

फसल चक्र :

प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष
आलू (अगात)	आलू (मध्य)	प्याज
फूलगोभी (अगात)	आलू	प्याज
धान	प्याज	प्याज
आलू (अगात)	फूलगोभी (मध्य)	प्याज

रोग एवं व्याधि

प्याज की आंगमारी : पत्ते पर भूरे धब्बे बाद में पत्ते सूख जाते हैं–इसके लिये 0.15% डायथेन जेड–78 का छिड़काव करें।

मृदूरोमिल फफूंदी : पत्ते पहले पीले, हरे और लम्बे हो जाते हैं तथा उन पत्तों पर गोलाकार धब्बे दिखाई पड़ते हैं। बाद में ये पत्ते मुड़ने और सूखने लगते हैं।

इसकी रोक थाम के लिये 0.35% ताम्बा जनित फफूंदी नाशक दवा का छिड़काव करें।

गले का गलन : इसके प्रकोप होने पर शल्क गलकर गिरने लगते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए फसल को कीड़े और नमी से बचावें।

प्याज का थ्रीप्स : इसके पिल्लू या कीड़े पत्तों और जड़ों को छेद कर रस चूसते हैं। फलस्वरूप पत्तियों पर उजली धारियाँ दिखाई पड़ने लगते हैं और सारा फसल सफेद दिखने लगते हैं।

रोकथान : इसके रोकथाम के लिये कीटनाशी दवा (मालाथियान) का छिड़काव करें।

फसल की कटाई : जब पौधों के तने सूखने लगे और सूखकर तना पीछे मुड़ने लगे तब प्याज के कन्दों को खुरपी के सहारे उखाड़ लिया जाय।

गाँठ सहित पौधों को तीन चार सप्ताह तक छाया में अवश्य सूखा लें।

बीजोत्पादन : जमीन की तैयारी पूर्व की तरह की करें। बीज का उत्पादन (क) कन्द से बीज (ख) बीज से बीज प्याज के कन्द से ही बीज उत्पादन होता है। प्याज पर परागित पौधा है अतः एक ही किस्म के बीज एक जगह लगते हैं और दो किस्मों के बीच पर्याप्त दूरी छोड़ते हैं (कम से कम 700 मीटर) कन्द लगाने का समय अक्टूबर है। फूल जनवरी में लगते हैं। समय-समय पर परागण हेतु प्याज के फल लगे डंठलों को हिलाना आवश्यक होता है,ताकि पूर्ण परागण हो सके।

(ख) पुराने एवं स्वस्थ गांठों को जमीन में रोपते हैं इन गाँठों से बीज के बाल निकलते हैं। फूल लगते हैं। फूल के गुच्छे जब सूख जाते हैं तो इसे झाड़कर बीज प्राप्त करते हैं।

भंडारण : सूखे कन्दों को हल्की मिट्टी के ऊपर फैलाकर रखते हैं। इसे अंकुरण से बचाने के लिये मैलिक हाइड्राजाइड नामक रासायनिक दवा का (1000 से 1500 पी०पी०एम०) छिड़काव कर देते हैं।

❑

अध्याय 14

फूलगोभी की वैज्ञानिक खेती

डा० डी० एन० चौधरी
सेवानिवृत प्राचार्य
मण्डन भारती कृषि महाविद्यालय, सहरसा

गोभी वर्गीय सब्जियों में फूलगोभी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से श्वेत, अविकसित व गठे हुए पुष्प पुंज के उत्पादन हेतु की जाती है। इसका उपयोग सब्जी, सूप, अचार, सलाद, बिरियानी, पकौड़ा इत्यादि बनाने में किया जाता है। साथ ही यह पाचन शक्ति को बढ़ाने में अत्यन्त लाभदायक है। यह प्रोटीन, कैल्शियम और विटामिन 'ए' तथा 'सी' का भी अच्छा श्रोत है।

जलवायु : इसकी सफल खेती के लिए ठंढा और आर्द्र जलवायु सर्वोत्तम होता है। अधिक ठंढा और पाला का प्रकोप होने से फूलों को अधिक नुकसान होता है। शाकीय वृद्धि के समय तापमान अनुकूल से कम रहने पर फूलों का आकार छोटा हो जाता है। अच्छी फसल के लिए 15-20 डिग्री तापमान सर्वोत्तम होता है।

उन्नत किस्में : उगाये जाने के आधार पर फूलगोभी को विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है। इसकी स्थानीय तथा उन्नत दोनों प्रकार की किस्में उगायी जाती है। इन किस्मों पर तापमान एवं प्रकाश अवधि का बहुत प्रभाव पड़ता है। अत: इसकी उचित किस्मों का चुनाव और उपयुक्त समय पर बुआई करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि अगेती किस्म को देर से और पिछेती किस्म को जल्दी उगाया जाता है तो दोनों में शाकीय वृद्धि अधिक हो जाती है फलस्वरूप फूल छोटा हो जाता है और फूल विलम्ब से लगते हैं। इस आधार पर फूलगोभी को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है–पहला-अगेती, दूसरा-मध्यम एवं तीसरा-पिछेती।

अगेती किस्में : अर्ली कुंआरी, पूसा कतिकी, पूसा दीपाली, समर किंग, पावस, इम्प्रूब्ड जापानी

मध्यम किस्में : पन्त सुभ्रा, पूसा सुभ्रा, पूसा सिन्थेटिक, पूसा स्नोबाल, के०-1, पूसा अगहनी, सैगनी, हिसार नं०-1

पिछेती किस्में : पूसा स्नोबाल-1, पूसा स्नोबाल-2, स्नोबाल-16 ।

भूमि एवं उसकी तैयारी : फूलगोभी की खेती यों तो सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती, परन्तु अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट भूमि जिसमें जीवांश की प्रचुर मात्रा उपलब्ध हो, काफी उपयुक्त है। इसकी खेती के लिए अच्छी तरह से खेत को तैयार करना चाहिए। इसके लिए खेत को 3-4 जुताई करके पाटा मारकर समतल कर लेना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : फूलगोभी की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवांश का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेत में 20-25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट रोपाई के 3-4 सप्ताह पूर्व अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टर की दर से देना चाहिये। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा एवं फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई या प्रतिरोपण से पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए तथा शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा दो बराबर भागों में बाँटकर खड़ी फसल में 30 और 45 दिन बाद उपरिवेशन के रूप में देना चाहिए।

बीजदर, बुआई का समय एवं विधि : अगेती किस्मों का बीज दर 600-700 ग्राम और मध्यम एवं पिछेती किस्मों का बीज दर 350-400 ग्राम प्रति हेक्टयर है।

अगेती किस्मों की बुआई अगस्त के अंतिम सप्ताह से 15 सितम्बर तक कर देना चाहिए। मध्यम और पिछेती किस्मों की बुआई सितम्बर के मध्य से पूरे अक्टूबर तक कर देना चाहिए।

फूलगोभी के बीज सीधे खेत में नहीं बोये जाते हैं। अत: बीज को पहले पौधशाला में बुआई करके पौधा तैयार किया जाता है। एक हेक्टर क्षेत्र में प्रतिरोपण के लिए लगभग 75-100 वर्ग मीटर में पौध उगाना पर्याप्त होता है। पौधों को खेत में प्रतिरोपण करने के पहले एक ग्राम स्टेप्टोसाइक्लिन का 8 लीटर पानी में घोलकर 30 मिनट तक डुबाकर उपचारित कर लें। उपचारित पौधे की खेत में लगाना चाहिए।

अगेती फूलगोभी के पौधों की वृद्धि अधिक नहीं होती है। अत: इसका रोपण कतार से कतार 40 सेमी० पौधे से पौधे 30 सेमी० की दूरी पर करना चाहिए। परन्तु मध्यम एवं पिछेती किस्मों में कतार से कतार 45-60 सेमी० एवं पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी० रखना चाहिए।

सिंचाई : पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी काहोना अत्यन्त आवश्यक है। सितम्बर के बाद 10 या 15 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में 5 से 7 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : फूलगोभी में फूल तैयार होने तक दो-तीन निकाई-गुड़ाई से खरपतवार का नियंत्रण हो जाती है, परन्तु व्यवसाय के रूप में खेती के लिए खरपतवारनाशी दवा स्टाम्प 3.0 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टर का छिड़काव रोपन के पहले काफी लाभदायक होता है।

निकाई-गुड़ाई तथा मिट्टी चढ़ाना : पौधों की जड़ों के समुचित विकास हेतु निकाई-गुड़ाई अत्यन्त आवश्यक है। इस क्रिया से जड़ों के आस-पास की मिट्टी ढीली हो जाती है और हवा का आवागमन अच्छी तरह से होता है जिसका अनुकूल प्रभाव उपज पर पड़ता है। वर्षा ऋतु में यदि जड़ों केपास से मिट्टी हट गयी हो तो चारों तरफ से पौधों में मिट्टी चढ़ा देना चाहिए।

सूक्ष्म तत्वों का महत्व एवं उनकी कमी से उत्पन्न विकृतियाँ :

बोरन : बोरन की कमी से फूलगोभी का खाने वाला भाग छोटा रह जाता है। इसकी कमी से शुरू में तो फूलगोभी पर छोटे-छोटे दाग या धब्बा दिखाई पड़ने लगते हैं तथा बाद में पूरा का पूरा हल्का गुलाबी पीला या भूरे रंग का हो जाता है जो खाने में कडुवा लगता है। फूलगोभी एवं फूल का तना खोखला हो जाता है और फट जाता है। इससे फूलगोभी की उपज तथा माँग दोनों में कमी आ जाती है। इसके रोकथाम के लिए बोरेक्स 10-15 किलोग्राम प्रतिहेक्टर की दर से अन्य उर्वरक के साथ खेत में डालना चाहिए।

मॉलीब्डेनम : इस सुक्ष्म तत्व की कमी से फूलगोभी का रंग गहरा हरा हो जाता है और किनारे से सफेद होने लगती है जो बाद में मुरझाकर गिर जाती है। इससे बचाव के लिए 1.0 से 1.50 किलोग्राम मॉलीब्डेनम प्रति हेक्टर की दर से मिट्टी में मिला देना चाहिए। इससे फूलगोभी का खाने वाला भाग अर्थात कर्ड पूर्ण आकृति को ग्रहण कर ले एवं रंग श्वेत अर्थात उजला एवं चमकदार हो जाय तो पौधों की कटाई कर लेना चाहिए। ढेर से कटाई करने पर रंग पीला पड़ने लगता है और फूल फटने लगते हैं जिससे बाजार मूल्य घट जाता है।

प्रमुख कीड़े एवं रोकथाम : फूलगोभी में मुख्य रूप से लाही, गोभी मक्खी, हीरक पृष्ठ कीट, तम्बाकू की सूड़ी आदि कीड़ों का प्रकोप होता है। लाही कोमल पत्तियों का रस चुसती है। खासकर जाड़े के समय कुहासा या बदली लगी रहे तो इसका आक्रमण अधिक होता है। गोभी मक्खी पत्तियों में छेदकर अधिक मात्रा में खा जाती है। हीरक पृष्ठ कीट के सूड़ी पत्तियों की निचली सतह पर खाते हैं और छोटे-छोटे छिद्र बना लेते हैं। जब इसका प्रकोप अधिक मात्रा में होता है तो छोटे पौधों की पत्तियाँ बिल्कुल समाप्त हो जाती है

जिससे पौधे मर जाते हैं। तम्बाकू की सूड़ी के वयस्क मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर झुण्ड में अण्डे देती है। 4-5 दिनों के बाद अण्डों से सूड़ी निकलती है और पत्तियों को खा जाती है। सितम्बर से नवम्बर तक इसका प्रकोप अधिक होता है। उपरोक्त सभी कीड़ों का जैसे ही आक्रमण शुरू हो तो इन्डोसल्फान, नुवाक्रान, रोगर, थायोडान किसी भी कीटनाशी दवा का 1.5 मिली० पानी की दर से घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

रोग एवं नियंत्रण : फूलगोभी में मुख्य रूप से गलन रोग, काला विगलन, पर्णचित्ती, अंगमारी, पत्ती का धब्बा रोग तथा मृदु रोमिल आसिता रोग लगते हैं। वह फफूँदी के कारण होता है। यह रोग पौधा से फूल बनने तक कभी भी लग सकती है। पत्तियों की निचली सतह पर जहाँ फफुँदी दिखते हैं उन्ही के ऊपर पत्तियों केऊपरी सतह पर भूरे धब्बे बनते हैं जोकि रोग के तीब्र होजाने पर आपस में मिलकर बड़े धब्बे बन जाते हैं। काला गलन नामक रोग भी काफी नुकसानदायक होता है। रोग का प्रार्रंभिक लक्षण 'V' आकार में पीलापन लिये होता है। रोग का लक्षण पत्ती के किसी किनारे या केन्द्रीय भाग से शुरू हो सकता है। यह बैक्टीरिया के कारण होता है। इससे बचाव के लिए रोपाई के समय बिचड़े को स्ट्रेप्टोमाइसीन या प्लेन्टोमाइसीन के घोल से उपचारित कर ही खेत में लगाना चाहिए। (दवा की मात्रा-आधा ग्राम दवा + 1 लीटर पानी) बाकी सभी रोगों से बचाव के लिए फफूँदीनाशक दवा इन्डोफिल एम०-45 का 2 ग्राम या ब्लाइटाक्स का 3 ग्राम 1 लीटर पानी की दर से घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए।

❑

बिहार में सब्जियों की खेती के अंतर्गत क्षेत्र एवं उत्पादन (2009-10)

क्रम सं०	सब्जियाँ	क्षेत्रफल (हे०)	उत्पादन (टन)
1.	आलू	313574	5387201
2.	प्याज	52728	1016069
3.	फूलगोभी	62219	1080122
4.	पत्तागोभी	38673	689926
5.	टमाटर	46512	1043729
6.	भिण्डी	58252	766596
7.	मिर्च	39531	453816
8.	बैगन	55288	1198644
9.	कद्दू	31114	645304
10.	नेनुआ	36482	504181
11.	खीरा	1786	19575
12.	झिगनी	8512	51242
13.	करैला	9207	65462
14.	तरबुज	1216	26071
15.	खरबुज	882	11007
16.	परवल	5911	63011
17.	बोदी	12993	101735
18.	मटर	9256	63496
19.	मूली	15677	245188
20.	गाजर	4492	52646
21.	अन्य	31061	456657
22.	कुल	835750	13950846

अध्याय 15

टमाटर की वैज्ञानिक खेती

गीता प्रसाद सहनी
सेवानिवृत सब्जी विशेषज्ञ, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

टमाटर सब्जियों की खेती में एक मुख्य फसल है क्योंकि इसमें खाद्य पौष्टिक पदार्थ प्रचूर मात्रा में मिलते हैं। एक अत्यन्त लोकप्रिय सब्जी होने के कारण देश भर में सफलता पूर्वक उगाई जाती है। इसके फल शहरों में प्राय: सालभर उपलब्ध रहते हैं। दूसरे विश्व केहर भाग में पैदावार के हिसाब से आलू के उपरान्त टमाटर का ही स्थान है।

टमाटर के उपयोग : सूप, सलाद, चटनी, सॉस और दूसरी सब्जी के साथ मिलाकर खाद्य पदार्थ तैयार करने में आता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिजपदार्थ, कैल्शियम, फास्फोरस, विटामिन, निकोटेनिक अम्ल आदि प्रचूर मात्रा में पाये जाते हैं।

जलवायु : कड़ी सर्दी तथा पाला में टमाटर के फलन में बाधा होती है। इसके लिए औसत तापमान 18-27 डिग्री से० है। टमाटर की गुणवत्ता उसके पौधे की बढ़ोत्तरी से कम हो जाती है। टमाटर की गुणवत्ता उसके रंग और आकार से आंकी जाती है और यह दोनों जलवायु से प्रभावित होते हैं। 10 डिग्री से० से नीचे टमाटर में लाल और पीला रंग बनना बंद हो जाता है और 30 डीग्री से० से ऊपर भी लाल रंग बनना कम हो जाता है। 40 डिग्री से० पर लालरंग का बनना तो बिल्कुल बंद हो जाता है। गर्म व शुष्क हवा से टमाटर के फूल झड़ जाते हैं।

मिट्टी : टमाटर प्राय: सभी प्रकार की मिट्टियों मेंउगाया जाता है। परन्तु, हल्की अम्लीय से लेकर, दोमट मिट्टी विशेष उपयुक्त है। मिट्टी में जैविक पदार्थ की अधिक मात्रा एवं पानी के निकास का उचित प्रबन्ध रहना काफी जरूरी है।

प्रजातियों एवं संकर :

उन्नत प्रभेद : पूसा रूबी, पूसा गौरब, एव०एस०-102, हिसार अरूण, हिसार लालिमा, हिसार ललित, मारग्लोब, पंजाब छुहारा, पंजाब केसरी, एन०डी०टी०-3, एन०डी०टी०-4, एन०डी०टी०-11, स्वीट-72, पूसा सदाबहार, पंत बहार।

शंकर : वैशालनि, रूपाली, नवीन, रजनी, अविनाश-2, अर्काविशाल, कंचन, पूसासंकर-1, पूसा संकर-2 और पूसा संकर-4

पौधा तैयार करना : टमाटर के पौधे नर्सरी में तैयार की जाती है। इसके लिए लगभग 400-500 ग्राम बीज प्रति हेक्टयर की जरूरत होती है। संकर किस्मों के बीज की मात्र प्रतिहेक्टेयर 200 ग्राम है। पौधों को गलने से रोकने के लिए बीज को एग्रोसन जी०एन० से शोधित करना चाहिए। 2 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज के लिए पर्याप्त होती है। बीज के क्यारियों में जिसमें पानी की समुचित निकास की व्यवस्था हो उसमें बीज को छिंटकर बोना चाहिए क्योंकि पंक्तियों में बोये गये बीजों में आर्द्रगलन रोग अधिक लगता है। बीज

को बोने के समय इन्हें मिट्टी में भली भाँति मिलाकर बोना चाहिए और गोबर की सड़ी खाद तथा हल्की बालू की परत से ढक देना चाहिए। अगर आवश्यकता हो तो फब्बारे से हल्की सिंचाई कर देना चाहिए। जब बीजों का अंकुरण हो जाय, तब 0.2% डाईथेन एम–45 का घोल का नियमित रूप से छिड़काव करना चाहिए ताकि पौधों को कोई फफूँदजनित रोग न लग सके।

खेत की तैयारी : खेत को 3-4 बार जोतकर अच्छी तरह तैयार कर लें। पहली जुताई जुलाई माह में मिट्टी पलटने वाले हल अथवा देशी हल से करें। खेत की जुताई के बाद समतल करके 250-300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से सड़ी गोबर की खाद को समान रूपसे खेत में बिखेरकर पुनः अच्छी जुताई कर लें और घास–पात को पूर्णरूप से हटा दें।

उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर किया जाना चाहिए। किसी कारण से अगर मिट्टी का जाँच संभव न हो तो उस स्थिति में प्रति हेक्टयर नेत्रजन–100 किलोग्राम, स्फूर–80 किलोग्राम तथा पोटाश–60 किलोग्राम की दर से डालना चाहिए।

एक तिहाई नेत्रजन, स्फूर और पोटाश की पूरी मात्रा का मिश्रण बनाकर, प्रतिरोपन से पूर्व मिट्टी में बिखेर कर अच्छी तरह मिला देना चाहिए। शेष नेत्रजन को दो बराबर भागों में बांटकर, प्रतिरोपण के 25 से 30 और 45 से 50 दिन बाद उपरिवेशन (टॉपड्रेसिंग) के रूप में डालकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए। जब फूल और फल आने शुरू हो जाए, उस स्थिति में 0.4-0.5 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करना चाहिए। लेकिन सान्द्रता पर काफी ध्यान देना चाहिए। अधिक सान्द्र होने पर छिड़काव से फसलों की पूरी बर्बादी होने की संभावना रहेगी।

हल्की संरचना वाली मृदाओं में फसल के फल फटने की संभावनायें रहती हैं। प्रतिरोपण के समय 20-25 किलोग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर, की दर से डालकर, मिट्टी में भली भाँति मिला देना चाहिए।

फलों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का घोल फल आने पर 3-4 चार छिड़काव किया जाना अनिवार्य है।

दूरी : कमजोर खेत में दूरी कम रखें। पौधों की औसत दूरी 60 से 70 सेमी० दोनों ओर से रखें। जब खेत अधिक उपजाऊ हो तो दो पौधे एक जगह रोपें। इन दिनों 60 × 45 सेमी० दूरी यानी अपेक्षाकृत कम दूरी लाभप्रद है।

सिंचाई : पहली सिंचाई प्रतिरोपण के तुरंत बाद करनी चाहिए। टमाटर में 15-20 दिनों पर सिंचाई करें। जाड़े में पाला तथा गर्मी में ''लू'' से बचाव के लिए 10-12 दिनों पर सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण : प्रतिरोपण के 35-40 दिन बाद खर–पतवार नियंत्रण बहुत जरूरी है, क्योंकि यह स्थिति एक संकट की घड़ी होती है। यदि इस समय खरपतवार नियंत्रण नहीं किया गया तो उससे पौधों की बढ़वार और विकास दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि खेत में कम खरपतवार हो, तो उन्हें उखाड़ कर निकाल देना चाहिए। यदि फसल अधिक क्षेत्र में उगाना हो और उसमें खरपतवार अधिक होने की सम्भावना हो तो उस स्थिति में खरपतवार नाशी दवा का उपयोग नितान्त आवश्यक है। इसके लिए ''लासो'' 2 किलोग्राम/हे० की दर से प्रतिरोपण से पूर्व डालना चाहिए। यह सबसे अधिक प्रभावशाली दवा है। आजकल रोपण के 4-5 दिन बाद स्टाम्प (Stamp) 1.0 किलोग्राम प्रति हे० की दर से इस्तेमाल करना अत्यन्त प्रभावशाली पाया गया है और ऊपज पर भी कोई प्रतिकुल प्रभाव नहीं डालता है।

वृद्धि नियंत्रक : विषाणु रोग को कम करने, अधिक या कम तापमान में फल निर्माण, और फलों की परिपक्वता बढ़ाने के लिए वृद्धि नियंत्रकों का उपयोग काफी जरूरी है। 50-100 पी०पी०एम० का

छिड़काव करने से अधिक या कम तापमान की स्थिति में फलों का निर्माण बढ़ जाता है। छिड़काव फूलों के गुच्छों पर करना अधिक प्रभावशाली पाया गया है, क्योंकि ऐसा करने से पौधे की बढ़वार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

500 पी०पी०एम० साइकोसेल का पौधशाला के पौधों पर प्रतिरोपण के 3-4 दिन पहले पर्णीय छिड़काव करना और प्रतिरोपण के 25-30 दिन बाद करने से विषाणु नामक रोग में कमी हो जाती है और अगेती फसल मिलती है। यदि फलों को पकाना है तो उसके लिए 1000 पी०पी०एम० इथ्रेल का छिड़काव उत्तम पाया गया है।

पौधों संरक्षण

कीट की रोकथाम

फल छेदक : यह टमाटर का सबसे बड़ा शत्रु है। पत्तों और फूलों को खाने के बाद यह फल से छेदकर अंदर से खाना शुरू कर देता है।

जैसिड : यह हरे रंग के छोटे-छोटे कीट होते हैं, जो पौधों से रस चूस लेते हैं, जिसके कारण पौधों की पत्तियाँ सूख जाती हैं।

सफेद मक्खी : ये सफेद छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जो पौधों से उनका रस चूस लेते हैं। इनसे पत्तियों के मुड़ जाने वाली बीमारी (मोजेक) फैलती है।

रोकथाम के लिए फसल बढ़वार की आरंभिक अवस्था में 0.05 प्रतिशत रोगी या मेटासिस्टॉक्स का छिड़काव करना चाहिए। फल छेदक से प्रभावित फलों और इस कीड़े के अंडों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें फिर छिड़काव करें। एक पखवाड़े के अन्तराल पर यह छिड़काव दूबारा करना चाहिए।

बिमारीयाँ : यह फसल को नर्सरी में सबसे हानि पहुँचाता है। रोकथाम के लिए प्रति किलोग्राम बीज को 2 ग्राम कैप्टाफ या वैविस्टिन से उपचारित करना चाहिए। क्यारियों की मिट्टी में 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉफ एक लीटर पानी में घोलकर हर 10-15 दिनों में छिड़काव करना चाहिए।

अगेती झुलसा : पत्तों और फलों में गहरे भूरे रंग के धब्बे आते हैं। रोकथाम के लिए 10-15 दिन के अन्तराल पर 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम–45 के घोल का एक छिड़काव करें।

ऊपज : उपरोक्त तथ्यों पर ध्यान रखते हुए उन्नत प्रभेदों से खेती करने पर प्रति हेक्टेयर 300 से 400 क्विंटल उपज मिल जाती है। तथा संकर किस्मों से प्रति हे० 500 से 600 किंवटल ऊपज मिलती है।

बीज उत्पादन : टमाटर, स्वपरागित फसल है। शुद्ध बीज पैदा करने के लिए दो किस्मों के बीच कम से कम 25 से 50 मीटर दूरी होनी चाहिए। मुख्य फसल से भिन्न पौधों को उखाड़ दें। बीज पूरी तरह पके टमाटर से लिया जाता है। फल से बीज निकालने की मुख्य दो विधियाँ हैं :

1. फलों के गूद्दे को पानी में 2-3 दिन तक गलाकर, साफ पानी में धोये तथा बीज को छाया में सुखायें।
2. फल के गूद्दे को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल 100 मिली० प्रति 10 किलो गूद्दे के साथ मिलाकर 30 मिनट तक रखें। गूद्दे को हिलायें और बाद में 2-3 बार साफ पानी से धोयें।

प्रति हेक्टेयर 100 से 125 किलोग्राम बीज की ऊपज मिलती है।

❑

अध्याय 16

बैगन की वैज्ञानिक खेती

उदय कुमार
तकनीकी सहायक, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (समस्तीपुर) बिहार

बैंगन सालो भर पैदा होने वाली सब्जी है। इसमें पोषक तत्व के साथ-साथ औषधीय, गुण भी मौजुद है। खासकर उजला बैंगन डायबिटीज के रोगियों के लिए काफी फायदेमंद होता है। अगर किसान भाई इसकी खेती में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनायें तो अच्छी पैदावार लेकर पैसा कमा सकते हैं।

जलवायु

बैंगन को लम्बे गर्म मौसम की आवश्यकता होती है। अत्यधिक सर्दियों में इस फसल को नुकसान पहुँचाते हैं।

भूमि

ऊपजाऊ एवं पूर्ण जल-निकास वाली भूमि अच्छी पैदावार के लिए अति आवश्यक है। यह एक ठोस पौधा है और सभी तरह के मिट्टी पर पैदा किया जा सकता है परन्तु दोमट और हल्की भारी मिट्टी इसके लिए काफी उपयुक्त है।

उन्नत प्रभेद : इसके प्रभेदों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। सामान्य और हाईब्रिड बैंगन की अच्छी पैदावार हेतु मुख्य सामान्य उन्नत प्रभेद हैं पूसा परपल लौंग, राजेन्द्र बैंगन–2, राजेन्द्र अन्नपूर्णा, पन्त बैंगन, पन्त सम्राट, पन्त ऋतुराज, अरकानिधि, सोनाली, कचबचिया इत्यादि।

मुख्य हाईब्रिड प्रभेद है पूसा अनमोल, अर्कानवनीत, पूसा हाइब्रिड–5, पूसा हाइब्रिड–6 एन०डी०बी०एच०–1इत्यादि।

बैंगन की सामान्य प्रभेद से प्रति हेक्टेयर 200-250 क्विंटल फल का उत्पादन होता है।

हाईब्रिड प्रभेदों की उत्पादन क्षमता बहुत अधिक होती है परन्तु किसान भाई हाईब्रिड बीज का प्रयोग एक पैदावार लेने के बाद न करे क्योंकि इसके बाद इसकी उपज क्षमता आधी रह जाती है और निरन्तर कम होती चली जाती है।

बीज दर एवं बोआई

करीब 375 से 500 g बीज एक हेक्टेयर लिए जरूरत पड़ता है। बीज की बोआई के लिए तीन मुख्य समय इस प्रकार है :

1. **रबी बैंगन/फसल के लिए :** जून महीनें में बीज की बोआई और जूलाई महीने में बिचड़ों का प्रतिरोपण करनी चाहिए।
2. **गर्मा बैंगन के लिए :** बीज की बोआई नवम्बर माह में एवं बिचड़ों का प्रतिरोपण जनवरी-फरवरी माह में करनी चाहिए।
3. **बरसाती बैंगन के लिए :** बीज की बोआई मार्च महीने में और बिचड़ों का प्रतिरोपण अप्रैल माह में करनी चाहिए।

बीज की बोआई करने के पहले किसान यह सुनिश्चित कर लें कि वह प्रभेद किस मौसम में ज्यादा उपयुक्त है।

बिचड़ों का प्रतिरोपन

चार से छः सप्ताह के बिचड़ों का प्रतिरोपन करना चाहिए। गर्मा मौसम के लिए 75 × 60 सेमी० पर तथा रबी मौसम के लिए 60 × 45 सेमी० के दूरी पर बिचड़ों का प्रतिरोपन करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बैंगन की फसल को 120-150 किलोग्राम नेत्रजन, 80 किलोग्राम स्फुर एवं 80 किलोग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। इसके लिए 200 किवंटल सड़ी हुई गोबर की खाद या 30 क्विंटल वर्मी कम्पोस्ट, 5 क्विंटल नीम की खल्ली, 50 किलोग्राम डी०ए०पी० 50 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश, 15 किलोग्राम जींक सल्फेट तथा 10 किलोग्राम बोरैक्स (सोहागा) खेत की तैयारी के समय ही डाल देना चाहिए। 100 किलोग्राम यूरिया रोपाई के एक माह बाद उपरिवेशन के तौर पर देना चाहिए।

निकाई-गुड़ाई एवं सिंचाई

निकाई-गुड़ाई एवं बराबर नमी बना रहे इसके लिए हल्की सिंचाई करते रहना आवश्यक है।

फलों की तुड़ाई

जब फल पूर्ण रूप से अपना आकार और रंग ग्रहण कर लें तो इसकी तुड़ाई करनी चाहिए।

बैंगन में समेकित रोग एवं कीट प्रबन्धन (IPDM)

बैगन में कई तरह के रोग एवं कीटों का प्रकोप होता है जिसके कारण इस फसल को काफी नुकसान पहुँचता है। खासकर फल-छेदक और तना-छेदक का प्रकोप इतना ज्यादा होता है कि इससे निपटने के लिए किसान अंधाधुंध रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप, मित्रकीटों की जनसंख्या तो घटती ही है साथ ही प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाने के चलते लक्षित कोई भी कीट नहीं मरते। वायु प्रदुषण, मृदा-प्रदुषण फैलता है सो अलग। इस तरह से उत्पादित बैगन भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अतः पौधा संरक्षण के लिए समेकित प्रबन्धन पद्धति को अपनाया जाए तो इन समस्याओं से निजात भी मिल जाएगा और स्वास्थ्य-वर्धक बैंगन का उत्पादन भी होगा।

बैंगन में लगने वाले रोग :

1. **डैम्पिंग आफ (बिचड़ा गलन) :** इसमें बीज या तो प्रस्फुटित होने के बाद मर जाता है या फिर बिचड़ा बड़ा होने के बाद मर जाता है।
2. **जीवाणु उखड़ा :** पौधा में बौनापन आना, पत्तों का पीला होजाना उसके बाद पूरे पौधे का एकाएक मुरझा जाना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण है।
3. **फ्यूजेरियम उखड़ा :** पत्तों में पीलापन आना। निचले पत्तों का पीला होना और नसों के बीच में भुरापन आना इस रोग के प्रमुख लक्षण है। ऐसे पौधों के तनों को लम्बवत् काटा जाय तो अन्दर का गुद्दा भूरा/काला नजर आएगा। और अन्ततः पौधा में पतझड़ होकर पौधा सुख जाता है।
4. **फोमोप्सिस अंगमारी :** पत्तों पर और जमीन से सटे फलों पर स्पाट बनने लगता है। इसके बाद पत्ते पीले होकर झड़ने लगते हैं।
5. **छोटी पत्तों का रोग :** इसमें पत्ते छोटे-छोटे हो जाते हैं और फल नहीं लगते हैं। लोग इसे बाँझी रोग भी कहते हैं।
6. **मोजैक :** यह जीवाणु रोग है। इसमें पत्ती पर मौजैक जैसा चित्र उभर जाता है।

बैंगन में लगने वाले कीट

1. **फल एवं तना छेदक :** इसमें कीड़े नए पत्तों एवं फलों में घुसकर खाता है और काफी मात्रा में नुकसान पहुँचाता है।
2. **एपीलैक्ना बीटल :** यह लाल, छोटा और गुम्दाकार कीड़ा होता है जो पत्तों को काटकर खाता है।
3. **जैसिड :** यह लीफ हापर है जो पत्तों में से रस चुसता है है फलस्वरूप पत्तों में कुकड़ी हो जाती है।
4. **जड़-निमेटोड :** पौधों में बौनापन आ जाता है। पत्तेपीले पड़ जाते हैं। पौधों के जड़ में गाँठ बन जाता है। परिणामस्वरूप पौधे सूख जाते हैं।
5. **लाल-मकड़ी :** पत्तों के निचले सतह पर लाल मकड़ी अपना जाल फैला कर पत्तों से रस चूसता है। परिणामस्वरूप पत्ते लाल दिखने लगते हैं।

इन तमाम रोगों एवं कीटों से बचाव हेतु समेकित रोगएवं कीट प्रबन्धन पद्धति अपनाना चाहिए ताकि कम लागत में अच्छी और रसायन-रहित बैंगन का उत्पादन किया जा सके। इस पद्धति में निम्नलिखित विधियों को अपनाना चाहिए।

1. कल्चरल विधि

(i) बैंगन की खुँटी एवं अन्य फसल अवशेषों को खेत से समय पर बाहर निकाल कर मिट्टी में दबा देना चाहिए।

(ii) बैगन फल के तुड़ाई के बाद रोग-ग्रस्त एवं कीट-ग्रस्त फलों को खेत में ना छोड़े। इसे मिट्टीयों में दबा दें।

(iii) गर्मीयों में गहरी जुताई करनी चाहिए ताकि मिट्टी में छुपने वाले कीड़े एवं अंडे तेज धुप में नष्ट होजाए।

(iv) एक ही खेत में लगातार बैंगन की खेती नहीं करनी चाहिए।

(v) नीम की खल्ली का व्यवहार (6-8q/हे०) करने से मिट्टी में पाये जाने वाले कीड़े की जनसंख्या में भारी कमी आती है।

(vi) सिर्फ अनुशंसित एवं प्रमाणित बीजों का ही उपयोग करना चाहिए।

(vii) बीजोपचार निम्न प्रकार से अवश्य करना चाहिए।

(क) ट्राईकोडर्मा (फफूँद)–4 ग्राम/किग्रा बीज

(ख) ग्लायोक्लैडियम (फफूँद)–4ग्रा०/किग्रा बीज

साथ ही ट्राइकोडर्मा से मिट्टी उपचार भी करना चाहिए ताकि उखड़ा रोग का नियंत्रण हो सके। इसके लिए इसका 10 किग्रा०/हे० सड़े हुए गोबर में मिला कर पहली जुताई में ही भूमि में मिला देना चाहिए।

(xi) खेतों में रोगी पौधे, खरपतवार एवं अन्य अवांछित पौधों की नहीं रखना चाहिए। इसलिए समय पर निकाई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।

(xii) 4-5 पंछी आश्रय प्रति हेक्टर बनाना चाहिए। इसके लिए खेतों में झाड़ीनुमा टहनियों को गाड़ देने से परभक्षी जैसे—बगुला, मैना इस पर बैठेंगे और शत्रुकीड़ों का भक्षण करेंगे।

(xiii) आक्रांत शाखाओं और फलों को तोड़कर खेत से बहार मिट्टी में दबा दें।

2. मेकैनिकल/यांत्रिक विधि

(i) आक्रांत फलों एवं पौधों को खेत से बाहर निकाल कर नष्ट कर दें।

(ii) गंध–पाश का उपयोग : इसके उपयोग से फल छेदक के प्रौढ़ नर आकर्षित होकर फंसते हैं। इस तरह नर कीटों की संख्या घटती है। मादा कीट का प्रजनन रूकता है और वह नए अंडे देने में अक्षम हो जाती है। नतीजतन फल छेदक कम लगते हैं। इसलिए 5-7 गंध–पाश प्रति हेक्टर उपयोग करना चाहिए।

(iii) पीला–फंदा जो चिपचिपा होता है का 30 फंदा प्रति हे० का उपयोग करने से एफिड और सफेद मक्खी एवं अन्य उड़ने वाले कीड़े (जो पीला रंग पर आकर्षित होते हैं) का नियंत्रण होता है।

3. जैविक विधि

(1) फलछेदक, तना छेदक एवं अन्य कीड़ों के नियंत्रण के लिए

(i) बैसीलस थुरिनजेनसिस (डीपील–8, डेलफिन)

(ii) एन०पी०भी०–4 मिली० प्रति लीटर पानी मं मिलाकर

(iii) नीम पर आधारित कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) बाभेरिया बासियाना, यह फफुंद आधारित कीट नाशक है का प्रयोग 4 मिग्रा० प्रति लीटर पानी में घोलकर करना चाहिए।

(v) लाल मकड़ी से बचाव के लिए सल्फर का प्रयोग करना चाहिए।

4. रासायनिक विधि :

कोई भी रासायनिक कीटनाशक का छिड़काव करने से पहले आर्थिक क्षति स्तर (ETL) का आकलन कर लेना चाहिए। और इसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब इसकी आवश्यकता आ पड़े।

(i) आर्थिक क्षति स्तर का आंकलन

(क) जैसिड – 2.3 /पत्ता

(ख) लाल मकड़ी – 10 / स्कवायूर सेमी०

(ग) सफेद मक्खी – 20 निम्फ / पत्ता

(घ) एफिड – 10 निम्फ/पत्ता

(ङ) फल छेदक – 5-10 प्रतिशत अक्रांत फल

(ii) अब रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब कीड़ों का आर्थिक क्षति स्तर ऊपर वर्णित स्तर तक पहुँच जाए।

(क) विभिन्न प्रकार के मृदा जनित एवं चुसने वाले कीड़ों को नियंत्रित करने के लिए फोरेट 10% जी (दानेदार) 10 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर सेप्रयोग करना चाहिए।

(ख)चुसने वाले कीड़ों के विरूद्ध थाईमेट 30% ई०सी० मिथाईल डिमेटोन 25% ई०सी० का प्रयोग करें।

(ग) फल छेदक एवं तना छेदक के लिए

ग्रुप A कीटनाशक इण्डोसल्फान 35% EC या
क्वीनालफाश 25% E.C.

ग्रुप 'B' कीटनाशक साईपर मेथ्रीन – 10% E.C.
फेनभलरेट – 20% E.C.
डेकमेथ्रीन – 28% E.C.

ग्रुप 'B' के कीटनाशकों का व्यवहार लगातार नहीं करना चाहिए इससे मित्र कीटों का नुकसान होता है।

अत: ऊपर वर्णित सभी तरीकों को अपनाने से रोग एवं कीड़ों का सफल प्रबन्धन किया जा सकता है।

❑

अध्याय 17

परवल की वैज्ञानिक खेती

श्रीमती निशी केशरी
सहायक प्राध्यापक, रा०कृ०वि०, पूसा (समस्तीपुर) बिहार

परवल, कद्दू कुल की एक पौष्टिक सब्जी है। स्वास्थ्यवर्धक होने के कारण यह अधिक लोकप्रिय है। पोषण की दृष्टि से यह सब्जियों में विशेष स्थान रखता है। आर्थिक दृष्टि से भी परवल का कोई जवाब नहीं है। इसकी खेती का विस्तार दिनों-दिन तेजी से फैल रहा है, जिसके निम्नलिखित कारण है :

1. परवल भारतीय मूल की बहुवार्षिक सब्जी है।
2. यह शीतल, पित्तनाशक, शीघ्र पचने वाला, हृदय एवं मस्तिक को बलशाली बनाने वाला तथा दस्तावर होता है।
3. इसका उपयोग मुख्य रूप से सब्जी, अचार और मिठाई बनाने के लिये किया जाता है।
4. इसमें विटामिन, कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।
5. स्वास्थ्य लाभ कर रहे व्यक्तियों को इसकी सब्जी पथ्य के रूप में दी जाती है।
6. इसकी खेती से अन्य सब्जी फसलों की तुलना में अधिक शुद्ध लाभ मिलता है।
7. फलों को तुड़ाई के बाद कई दिनों तक रखने पर भी खराब नहीं होते हैं। अत: इनका भण्डारण कर दूर-दराज के बाजारों में बेचना अत्यन्त सरल है।
8. दूर-दूर के शहरों के बाजारों में परवल को ट्रक या रेलगाड़ी द्वारा भेजने पर भी फलों की गुणवत्ता रहती है। अत: इसका विपणन आसान और अधिक लाभप्रद है।

उत्पत्ति तथा विश्व एवं भारत में वितरण

परवल का जन्म स्थान भारत है। परवल का विस्तार यहीं से विश्व के अन्य देशों में हुआ है, ऐसा वैज्ञानिकों का सोच है। विश्व में परवल की खेती भारत के अतिरिक्त चीन, रूस, थाइलैंड, पोलैंड, पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, श्रीलंका, मिश्र तथा म्यानमार में होती है। भारत में उत्तरप्रदेश, बिहार, असम, पश्चिम-बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल तथा तामिलनाडु राज्यों में विस्तारपूर्वक परवल की खेती की जाती है। उत्तरप्रदेश में परवल की खेती व्यावसायिक स्तर पर जौनपुर, फैजाबाद, गोण्डा, वाराणसी, गाजीपुर, बलिया तथा देवरिया जनपदों में होती है। बिहार में परवल की व्यावसायिक खेती पटना, वैशाली, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, चम्पारण, सीतामढ़ी, बेगूसराय, खगड़िया, मुंगेर तथा भागलपुर में होती है। बिहार में विस्तारपूर्वक इसकी खेती मैदानी तथा दियारा क्षेत्रों में की जाती है, परन्तु परवल की खेती बक्सर जिला से राधानगर साहेबगंज जिला तक गंगा दियारा के दोनों किनारों पर विशेष रूप से नगदी फसल के रूप में की जाती है। इसलिए परवल को दियारा क्षेत्रों का ''ग्रीन गोल्ड'' अथवा ''गोल्डेन बेजीटेबुल ऑफ दियारा'' कहा जाता है।

परवल के लिए आबोहवा

परवल की खेती के लिए गर्म एवं अधिक आर्द्रता वाली जलवायु उपयुक्त होती है। ऐसे क्षेत्र जहाँ औसत

वार्षिक वर्षा 100 से 120 सेमी० हो तथा तापक्रम 5 डिग्री सेल्सियस से कम नहीं जाता हो, वह क्षेत्र परवल की खेती के लिए सर्वोत्तम होता है। लेकिन जहाँ सिंचाई की सुविधा न हो, वहाँ भी परवल की खेती सफलतापूर्वक होती है। बिहार की गंगा, सोन एवं गंडक दियारा क्षेत्रों में परवल की असिंचित फसल ही उगाई जाती है, फिर भी उपज अधिक प्राप्त होती है।

भूमि का चुनाव एवं उसकी तैयारी

परवल भारी मिट्टी को छोड़कर सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है, परन्तु परवल की अच्छी पैदावार के लिए जल निकासयुक्त दोमट, बलुई दोमट मिट्टी जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश हो, अधिक उपयुक्त होती है। यही कारण है कि परवल की खेती उत्तरप्रदेश, बिहार एवं पश्चिम बंगाल की नदियों के किनारों के दियारा क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है। परवल को हमेशा ऊँचे स्थान पर लगाना चाहिए, जहाँ पानी का जमाव नहीं होता हो। उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल में परवल की खेती पान के बरेजों में अन्तरावर्ती फसल के रूप में करने की प्रथा अत्यन्त पुरानी है, जहाँ के परवल के फल उच्च कोटि के गुणवत्ता वाले होते हैं।

खेत की तैयारी

मई-जून के महीनों में मिट्टी पलटने वाले हल से खेत को एकबार जुताई कर खुला छोड़ देना चाहिए ताकि हानिकारक कीड़े-मकोड़े पर जायें तथा खरपतवार सुख जायें। लत्तर की रोपाई के लगभग एक महीना पहले मिट्टी में गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट 200-250 क्विंटल प्रति हेक्टर की दर से अच्छी तरह मिला देना चाहिए। लत्तर रोपाई के समय खेत को 3-4 बार देशी हल से जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरा तथा समतल बना लेना आवश्यक है।

परवल की उन्नतशील किस्में

व्यावसायिक दृष्टि से परवल की किस्में निम्नलिखित हैं—

उत्तरप्रदेश में फैजाबाद परवल–1, फैजाबाद परवल–2, फैजाबाद परवल–3, फैजाबाद परवल–4, फैजाबाद परवल–5, लोकप्रिय है। परन्तु बिहार में हिल्ली, डन्डाली, राजेन्द्र परवल–1, राजेन्द्र परवल–2, स्वर्ण रेखा, स्वर्ण अलौकिक, निमियाँ, सफेदा, सोनपुरा, संतोखबा, तिरकोलबा, गुथलिया इत्यादि की खेती विशेष रूप से होती है। लेकिन पश्चिम बंगाल में सियालदह तथा नदिया जिलों में परवल की स्थानीय किस्में अधिक प्रचलित हैं।

परवल का प्रसारण

परवल उगाने की निम्नलिखित विधियाँ हैं।

1. बीज द्वारा

पके फलों से बीज निकालकर सर्वप्रथम इन्हें बालूदार नर्सरी क्यारियों में बोआई कर बिचड़े तैयार कर लेते हैं तथा दो-तीन महीने पुराने बिचड़ों को तैयार खेत में संध्या के समय रोपाई कर पानी दे देना चाहिए। बीज द्वारा परवल की खेती करने में कठिनाई यह है कि नर पौधे अधिक हो जाते हैं तथा मादा पौधे की संख्या कम होने से उपज घट जाती है। अत: यह विधि लोकप्रिय नहीं हैं।

2. जड़ों की कलम द्वारा

इस विधि में जड़ों के साथ तना का 1 या 2 इंच भाग जिसपर पाँच-छ: गाँठें हो, लगते हैं। इस विधि में पौधे जल्द बढ़ते हैं तथा फलन अगात होती है परन्तु कठिनाई यह है कि बड़े पैमाने पर परवल की रोपाई हेतु अत्यधिक संख्या में जड़वाली कलमों का उपलब्ध होना एक प्रमुख समस्या भी है।

3. लत्ताओं की लच्छी द्वारा

इस विधि में सालभर पुरानी लतायें जिनकी लम्बाई कम से कम 120-150 सेमी० हो को लच्छी बनाकर

रोपते हैं। कहीं-कहीं लच्छी का दोनों किनारा जमीन से ऊपर रखते हैं और बीच का हिस्सा मिट्टी में दवा देते हैं। उत्तरप्रदेश और बिहार में व्यावसायिक स्तर पर परवल लगाने की यह एक लोकप्रिय विधि है।

बीज का मात्रा : 2500-3000 लतायें (बेलें) या लच्छियाँ/कटिंग्स/हे० की आवश्यकता होती है।

रोपाई का समय एवं विधि

रोपाई का समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग होता है। मैदानी भागों में परवल की रोपनी का उचित समय मध्य जुलाई से अक्टूबर तक और दियारा क्षेत्रों में सितम्बर से अक्टूबर तक होता है।

परवल में अलग-अलग पौधों पर नर और मादा फूल उत्पन्न होते हैं। नर पुष्पों से फल नहीं बनते हैं बल्कि वे मादा पुष्पों में परागण का कार्य करते हैं जिसमें मादा पुष्पों से फल बनना सम्भव होता है। नर पुष्प बड़े और सफेद होते हैं, जबकि मादा पुष्प थोड़ा छोटा और सफेद होता है, उसके नीचे गर्भाशय जुड़ा रहता है जो कुछ दिनों में परागण के बाद बढ़कर फल बन जाता है। इसका विस्तार लताओं या बेलों द्वारा किया जाता है। परवल लगाने के समय नर और मादा पौधों का अनुपात 1 : 19 होना अनिवार्य है। उपरोक्त अनुपात नहीं रहने पर उत्पादन में काफी कमी हो जाती है। खेत में कतार से कतार की दूरी 2.5 मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 1.5 मीटर रखना चाहिए साथ ही थल्ले, भूमि की सतह से 6-8 सेमी० ऊँचाई पर बनाने की चाहिए। एक वर्ष पुरानी लताओं से 120-150 सेमी० लम्बे टुकड़े काटकर इस प्रकार मोड़ना चाहिए की लच्छी की लम्बाई 30 सेमी० हो जाये तथा 10 सेमी० गहरे थालों में इस प्रकार लगाया जाय कि दोनों सिरे ऊपर खुले रहें।

खाद् एवम् उर्वरक

प्रति थाला 3-4 किलोग्राम कम्पोस्ट, 250 ग्राम अंडी की खल्ली, 10 ग्राम यूरिया, 100 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 25 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 25 ग्राम एल्ड्रीन धूल 10 प्रतिशत मिट्टी में मिलाकर भर देना चाहिए। जिस मिट्टी में चूना की कमी हो उसमें प्रति थाला 100 ग्राम चूना अवश्य मिला देना चाहिए।

इस प्रकार थाला भरकर 10 दिन तक छोड़ देना चाहिए। फरवरी के मध्य में प्रति थाला 20 ग्राम यूरिया का उपरिवेशन तथा मार्च माह के अन्त में प्रति वाला यूरिया के बदले 35 ग्राम कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का व्यवहार करना चाहिए। उर्वरकों के प्रयोग के बाद सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

सिंचाई

परवल फसल लगाने के तुरन्त बाद आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करनी चाहिए। अगली सिंचाई माह के मध्य से मई-जून तक 10-15 दिनों के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। पुष्पन और फलन के समय खेत में नमी का होना अति आवश्यक है।

निकाई-गुड़ाई

रोपनी के बाद और फल लगने के समय तक 4-5 बार निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए ताकि लताओं की शाकीय बृद्धि तेजी से हो। लताओं के बढ़ जाने पर इसकी अनावश्यक वृद्धि को रोकने के लिए बार-बार लताओं को हाथ से उलटते-पलटते रहना चाहिए। ऐसा करने से गाँठों से जड़ें निकलकर जमीन में प्रवेश नहीं कर पाती है और फलन अधिक होता है।

मचान बनाना या सहारा देना

फरवरी माह में जब पौधों में नये कल्ले फूटने लगते हैं तब मचान बनाने का काम शुरू कर देना चाहिए। परवल के दो कतारों के बीच 2 मी० चौड़ाई में 2-2 मी० की दूरी पर खम्बे गाड़ते हैं। जमीन की सतह से 1-1. 25 मीटर की ऊँचाई पर बॉस को लम्बाई-चौड़ाई और बीच में इस प्रकार सुतली से बाँधते हैं कि मचान के रूप में बन जाये। मचान के ऊपर अरहर के डंठलों को फैलाकर सुतली से बाँध देना चाहिए। प्रत्येक कतार के साथ 50 सेमी० खाली स्थान रास्ता छोड़ना चाहिए ताकि दवा का छिड़काव, निकाई-गुड़ाई, सिंचाई तथा फलों की तुड़ाई आदि कृषि क्रियाओं को आसानी-पूर्वक किया जा सके। लताओं को मचान पर अरहर के डंठलों के सहारे चढ़ाना चाहिए। मचान मजबूत बनाना चाहिए ताकि वर्षा ऋतु में गिरने न पाये।

फलों की तूड़ाई

साधारणत: मार्च माह के मध्य से पौधों पर फल लगना शुरू हो जाता है। प्रारम्भ में फल लगने के 10-12 दिनों के बाद फल तोड़ने लायक हो जाते हैं। इस प्रकार मार्च एवं अप्रैल माह में फलों की तोड़नी प्रति सप्ताह एकबार तथा मई माह में प्रति सप्ताह दो बार अवश्य करनी चाहिए। फलों की तुड़ाई मुलायम एवं हरी अवस्था में सूर्योदय से पहले करनी चाहिए। इससे फल अधिक समय तक ताजे बने रहते हैं।

ऊपज

अनुशंसित किस्मों को उन्नत तौर-तरीके से लगाकर प्रथम वर्ष औसतन 75-90 क्विंटल प्रति हेक्टर और अलग तीन-चार वर्षों तक 175-200 क्विंटल प्रति हेक्टर तक फलों की उपज प्राप्त की जा सकती है। दियारा क्षेत्रों में परवल की पैदावार बाढ़ आने के समय पर निर्भर करती है। यदि बाढ़ अगस्त के मध्य में आयी हो तो औसतन ऊपज 175-200 क्विंटल/हे० प्राप्त होती है। यदि बाढ़ का समय जुलाई माह के मध्य होता है, तो औसतन उपज 80-90 क्विंटल प्रति हेक्टर ही सीमित रह जाती है। पान के साथ परवल की मिश्रित खेती करने पर फसलों की औसत उपज एक चौथाई ही प्राप्त होती है परन्तु फलों की गुणवत्ता उच्च कोटि की होती है।

लताओं की कटाई-छटाई

अक्टूबर-नवम्बर में जब पौधों पर फल लगना बन्द हो जाता है, तब लताओं को जमीन की सतह से 20-25 सेमी० तक छोड़कर शेष उपरी भाग को काट देना चाहिए। ऐसा करने से शेष भाग से नई शाखायें निकलती है। ये शाखायें पुन: मार्च से फल देना शुरू कर देती है।

पेड़ी 'रैटून' फसल

अक्टूबर-नवम्बर में लताओं की छटाई करने के बाद दूसरे एवं तीसरे वर्ष अच्छी फलन के लिए खेत की निकाई-गुड़ाई करके 200-250 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद प्रति हेक्टर की दर से थालों के चारों तरफ मिट्टी में मिलाकर सिंचाई कर देनी चाहिए। एक वर्ष और दो वर्ष पुरानी पौधों में जब जनवरी-फरवरी माह में नये कल्ले फूटने लगें, तब अच्छी उरपज के लिए अनुशंसित खाद एवं उर्वरक की मात्रा पर अवश्य देनी चाहिए।

प्रमुख हानिकारक कीड़े एवं रोकथाम

1. लाल भृंग कीट

परवल में पत्ती बनने के समय ही इसका आक्रमण हो जाता है और पत्तियों को खाकर छलनी कर देता है, जिससे पौधे मर जाते हैं। इसकी नियंत्रण के लिए गोयठे की राख में किरासन तेल मिलाकर पत्तों पर प्रात: काल छिड़काना चाहिए। डायमेक्रोन या नुवान का भी छिड़काव 3 मिली० 10 लीटर पानी में घोलकर करना लाभकारी होती है।

2. फलों की मक्खी

यह मुलायम फलों की त्वचा के नीचे अण्डे देती है जहाँ से इस कीड़े की गिडार फलों के गुद्दे को खाकर फलों को सड़ा देते हैं जिससे फसल को भारी नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए मालाथियान 1-1.5 मिली० प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना अत्यन्त आवश्यक है। तेज धूप में दवा का छिड़काव नहीं करनी चाहिए।

3. लाही

ये छोटे-छोटे कीड़े पौधे पर समूह में मौजूद होते हैं तथा ये पौधों के पत्तों एवं नये तनों का रस चुसकर पत्तियों एवं पौधों को पीला बना देते हैं। जिससे पौधे सुखकर मर जाते हैं। इस कीड़े के नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत मालाथियान या पाराथियान का छिड़काव सप्ताह में एक बार तब तक करते रहना चाहिए जब

तक कि कीड़े पूर्णरूप से समाप्त नहीं हो जायें। इस दवा की मात्रा एक हेक्टर के लिए 2 लीटर होती है। जिसे 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

प्रमुख रोग एवं रोकथाम

1. चूर्णिल आसिता

पौधे के सभी हरे भागों पर सफेद पाउडर दिखाई पड़ता है। बाद में पत्तियाँ सुख जाती है, पौधों की बृद्धि रूक जाती है। नम मौसम में रोग तेजी से फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए खेत के आस-पास लत्तरदार फसलों को नहीं उगने देना चाहिए। सल्फेक्स की 2.5 किलोग्राम मात्रा को या कैराथेन की 1 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

2. मृदुरोमिल आसिता

पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे बनते हैं। इन धब्बों को ठीक नीचे पत्ती की निचली सतह पर धूल रंग के फँफूद के जाल दिखाई पड़ते हैं। पत्तियाँ मर जाती हैं और पौधों को बढ़वार रूक जाती है। इसके निदान के लिए इन्डोफिल एम०-45 की 2 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

3 फल सड़न रोग

यह रोग खेत तथा भण्डारण में कहीं भी लग सकता है। फलों पर गीले गहरे हरे रंग के धब्बे बनते हैं, ये धब्बे बढ़कर फल को सड़ा देते हैं तथा इन सड़े फलों से बदबू आने लगती है जो फल जमीन से सटे होते हें वे ज्यादा रोगी होते हैं। सड़े फल पर रूई जैसा कवक दिखाई पड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को जमीन के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए। इसके लिए जमीन पर पुआल या सरकंडा को बिछा देना चाहिए। इन्डोफिल एम०-45 की 2 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रतिहेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

4. मोजैक

यह एक वाइरस जनित रोग है। रोग ग्रस्त पत्तियाँ झूरीदार, छोटी तथा नीचे की ओर मुड़ जाती है। रोगी पौधों के तनों का रंग हरा एवं पीला हो जाता है। रोगग्रस्त फल सफेद हो जाते हैं और फलों काआकार छोटा हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक देना चाहिए। साथ ही साथ रोगर नामक दवा की 0.03 प्रतिशत के घोल का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिए।

5. सुत्रकृमि

इसके प्रकोप से जड़ों पर छोटे-छोटे ग्रंथियाँ बन जाती है। छोटी तथा पीली पत्तियों का होना इसका मुख्य लक्षण है। इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रस्त पौधों की जड़ों को निकालकर देना चाहिए। नीम अथवा अण्डी की खल्ली या लकड़ी का बुरादा 25 क्विंटल प्रति हेक्टर की दर से फसल लगाने के 3 सप्ताह पहले खेत में डालना अत्यन्त लाभप्रद होता है। साथ ही इसकी रोकथाम हेतु परवल की खेती गेन्दा फूल के फसल चक्र के साथ करनी चाहिए।

आय-व्यय का लेखा-जोखा

परवल की एक हेक्टर क्षेत्रफल में खेती करने से सभी मदों पर लगभग 20,000/- रुपये का खर्च पड़ता है। यदि कुल 100 क्विंटल परवल की उपज हो जिसे कम से कम 500/- रुपये प्रति क्विंटल की दर से बेचा जाये तो कुल 50,000/- रुपये की आमदनी होती है। इसमें से लागत खर्च के बीस हजार रुपये की शुद्ध आमदनी प्रति हेक्टर होती है। इस प्रकार एक रुपये लागत पर परवल की खेती से 1.50 रुपये की शुद्ध प्राप्त होती है।

❑

अध्याय 18

भिण्डी की वैज्ञानिक खेती

श्रीमती अनुपमा कुमारी
विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य), कृषि विज्ञान केन्द्र, हाजीपुर

भिण्डी एक लोकप्रिय सब्जी है। इसका उत्पादन मुख्यत: सब्जी के लिए किया जाता है। गर्मा तथा बरसाती मौसम की सब्जियों में भिण्डी एक प्रमुख सब्जी है। इसके इस्तेमाल से शरीर के प्रचुर मात्रा में विटामिन–ए, बी, सी, प्रोटीन तथा खनिज तत्व की प्राप्ति होती हे। इसके जड़ और तना का प्रयोग गुड़ तथा चीनी को साफ करने के लिए किया जाता है। इसके तने के रेशेदार छिलके का इस्तेमाल पेपर मिल में करते हैं। भिण्डी की खेती लगभग सालोभर की जाती है साथ ही साथ व्यवसायिक रूप में हमारे राज्य में इसकी खेती की जा रही है। इसकी फसल के लिए 25° से 30° सेन्टीग्रेड का तापमान सबसे अच्छा होता है।

जलवायु एवं मिट्टी : भिण्डी लम्बे एवं गर्म मौसम वाली फसल है। वैसे इसकी खेती सालोंभर की जाने लगी है। इसकी खेती सभी प्रकार की भूमि में की जाती है। लेकिन बलुई दोमट या दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए विशेष उपयुक्त है। 6 से 8 पी०एच० मान वाली मिट्टी इस फसल के लिए अच्छी होती है।

उन्नत प्रभेद एवं उपज : भिण्डी की प्रमुख प्रभेद जिसमें वाई० भी० एम० यानी पीला वाला वायरस रोग नहीं लगता है तथा फल मुलायम लम्बे हरे होते हैं सबसे उपयुक्त माने जाते हैं। अरका अभय, अरका अनामिका, परभनी क्रान्ति, पंजाब पद्यमिनी इत्यादि गरमा मौसम की उन्नत किस्म है। इनकी उपज क्षमता 70-90 क्वि० प्रति हेक्टेयर है। पूसा सावनी 20-25 सेमी० लम्बे हरे रंग के, कोमल, रोआँ रहित फल तथा मोजैक रोग प्रतिरोधी गुण वाली अच्छी किस्म है।

पूसा मखमली 20-25 सेमी० लम्बे, हरे कोमल तथा रोआ रहित फल वाली प्रभेद हे। ये दोनों किस्म गरमा तथा बरसात दोनों मौसम में लगायी जाती है। इनकी उपज क्षमता 100-125 क्वि० प्रति हेक्टेयर हो बरसाती किस्म में परभनी क्रान्ति, सेलेक्सन 8 एवं 10 तथा के० एस० 312 इत्यादि बरसात के लिए अच्छी होती है। इन सभी किस्मों की उपज क्षमता 90 से 125 क्वि० प्रति हेक्टेयर होती है। संकर किस्मों में भवानी, कृष्ण, हाइब्रिड–6 तथा हाईब्रिड–8, इन्द्रानिल तथा अनोखी इतयादि प्रमुख है।

खेती की तैयारी : खेत की अच्छी तरह से 3-4 बार जुताई करें। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें। ताकि खेत से खरपतवार अच्छी तरह साफ हो जाए। दूसरी व तीसरी जुताई के समय 200 क्वि० कम्पोस्ट खेत में मिला दें। अन्तिम जुताई के समय नेत्रजन की आधी मात्रा तथा स्फूर व पोटाश की पूरी मात्रा खेत में मिला दें। जुताई के बाद खेत में पाटा चलाकर मिट्टी की भुरभुरी तथा समतल बना लें।

नेत्रजन की शेष आधी मात्र पौधा जमने के 25 से 30 तथा 50-55 दिनों बाद दो बार में पौधों की जड़ों के पास देकर मिट्टी में अच्छी तरह से मिला दें।

बीज एवं बुआई : बीज दर बरसाती में 8-10 किग्रा० तथा गरमा मौसम में 15-20 किग्रा० बीज प्रति हेक्टेयर है। बीज का उपचार 2.5 ग्राम थीम या कैप्टान या वेविस्टीन दवा से प्रति किग्रा० बीज की दर से करें।

बुआई का समय : गरमा फसल की बुआई का सबसे अच्छा समय 15 जनवरी से फरवरी के अन्त तक होता है। जबकि बरसाती फसल को जून–जुलाई में लगते हैं।

बुआई की विधि : भिण्डी के बीज सीधे खेत में ही लगाये जाते हैं। गरमा मौसम में बीज की बुआई बीज को 24 घंटे पानी में भिंगोकर एवं अंकुरण कराकर करनी चाहिए। गरमा मौसम में इसके बीजों की बुआई 45 × 30 सेमी० (कतार से कतार की दूरी 45 सेमी० तथा पौध से पौध की दूरी 30 सेमी० तथा पौध से पौध की दूरी 45 सेमी०) पर करें। एक स्थान पर एक या दो बीज की बुआई करनी चाहिए। फसल की सिंचाई के लिए मेंड़ व नाली बुआई से पूर्व बना लें।

खाद एवं उर्वरक : भिण्डी की अच्छी उपज हेतु सही और संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का व्यवहार मिट्टी के जाँच के उपरान्त ही करना चाहिए। इसकी खेती में निम्नलिखित मात्रा में खाद एवं उर्वरक के व्यवहार की अनुशंसा की जाती है। कम्पोस्ट 150-200 क्वि० प्रति हेक्टर या 60-80 क्वि०/हेक्टयर वरमी कम्पोस्ट, यूरिया 200-250 किलोग्राम प्रति हेक्टर, सिगल सुफ्ट फास्फेट 250-350 किलोग्राम तथा पोटाश 80 से 100 किलोग्राम प्रति हेक्टर ।

निकाई–गुड़ाई एवं सिंचाई : सिंचाई के 3-4 दिनों बाद निकाई–गुड़ाई करने से खेत के खरपतवार नष्ट हो जाते है साथ ही साथ खेत की मिट्टी हल्की तथा खेत में नमी बनी रहती है। खेत में अधिक खरपतवार निकलने पर खरपतवार नाशी दवा लासो 2 लीटर 800 लीटर पानी में घोल बना कर खेत में छिड़कावें।

गरमा मौसम के भिण्डी की फसल को 8-10 दिनों पर सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई करते समय ध्यान रहे कि अधिक जल जमाव न हो सके। बरसात में आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों पर सिंचाई करें।

फसल चक्र तथा अन्तवर्ती खेती : 1. शकरकन्द–भिण्डी, 2. भिण्डी–पत्तगोभी–लौकी–एक वर्षीय फसल चक्र।

द्विवर्षिय फसल चक्र–टामटर–शाक–भिण्डी– फूलगोभी–लौकी इत्यादि।

अन्तर्वर्ती फसल के रूप में भिण्डी के साथ आलू, मटर, बैंगन, मकई, मूली, गोभी, शाक इत्यादि फसल लगा सकते हैं।

इस प्रकार भिण्डी की वैज्ञानिक खेती करके 100-125 क्विंटल प्रति हेक्टर की उपज प्राप्त कर अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं एवं किसान अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

❑

माघ मघारे, जेठे जारे, भादो सारे।
ओकर मेहरी, डेहरी संवारे॥

माघ में जब पानी पड़े तो किसान को चाहिए कि जमीन को खूब जुतवा दे। जुठ तक ढेले को वैसे ही छोड़ दे धूप में पतने के लिए। भादो में बरसात होने पर मिट्टी को सड़ने दें। फिर उसमें अनाज उपजाएँ। ऐसे खेत में इतनी फसल होगी कि किसान की घरवाली को अनाज रखने के लिए नई कोठी बनानी पड़ेगी।

अध्याय 19

लत्तरवाली सब्जियों की वैज्ञानिक खेती

कमलेश्वरी प्रसाद सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केन्द्र, अरवल

शाक : सब्जियाँ हमारे दैनिक भोजन व आहार के महत्वपूर्ण अंग हैं। हमारे प्रतिदिन के भोजन में सब्जियों की विशेष अहमियत इसलिए है कि सब्जियों से हमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लवण, विटामिन तथा खाद्य-रेशे प्राप्त होते हैं। सब्जियाँ हमें स्वस्थ शरीर, मजबूत दाँत और लम्बी उम्र प्रदान करती हैं। शाक्-सब्जियाँ न केवल हमारे भोजन को पौष्टिक, स्वादिष्ट तथा रूचिकर बनाती हैं बल्कि हमें सम्पूर्ण जीवन शक्ति प्रदान करती हैं जिससे हमारा शरीर स्वस्थ एवं सुडौल बना रहता है। शाक्-सब्जियों में अनेक रोगों को जड़ से नष्ट करने की अचूक क्षमता होती है।

प्रकृति ने हमें उपहार के रूप में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ, जलवायु और मौसम प्रदान किया है, जिसके फलस्वरूप विश्व में पैदा होने वाली सभी प्रकार की सब्जियाँ यहाँ उपजती तो हैं परन्तु लत्तरवाली सब्जियों का विशेष महत्व है। राष्ट्रीय सब्जी उत्पादन में लत्तरवाली सब्जियों का आर्थिक महत्व अधिक है। इन्हें उगाना सरल है। आप जहाँ चाहे वहाँ उगा सकते हैं, परन्तु इन सब्जियों की उत्पादकता प्रति इकाई भूमि में बहुत कम है। परम्परागत किस्मों की उन्नत तथा संकर किस्मों की खेती वैज्ञानिक ढंग से की जाय तो उत्पादन तथा उत्पादकता अवश्य बढ़ेगी। परन्तु सब्जी उत्पादन में हम अभी भी विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर हैं।

विशेषता : ईश्वर ने हमें अनुपम उपहार के रूप में विभिन्न प्रकार की भूमि तथा जलवायु प्रदान किया है जिसके फलस्वरूप भारत की इस पवित्र धरती पर विभिन्न प्रकार की शाक्-सब्जियाँ उपजती हैं जिनमें कद्दू वर्गीय लत्तर वाली सब्जियों की विशेष अहमियत है। इनके लोक प्रियता के निम्नलिखित कारण हैं :

1. लत्तर वाली सब्जियों की कृषि प्रणाली अत्यन्त सरल है। अत: इनकी खेती अत्यन्त लोकप्रिय है।
2. लत्तर वाली सब्जियों का प्रति हेक्टर बीज दर अत्यन्त कम है तथा उत्पादन में लागत खर्च भी कम है।
3. लत्तर वाली सब्जियों की खेती सालों भर होती है।
4. इनकी बागवानी न केवल समतल जमीन पर होती है बल्कि पेड़ों पर, छप्परों पर, आँगन में तथा नदियों के किनारे पर भी की जाती है।
5. कद्दू परिवार की लत्तर वाली सब्जियों के बिना प्रत्येक गृह-वाटिका अधूरी मानी जाती है।
6. इस वर्ग की सब्जियों का भंडारण आसान है तथा इन्हें दूर-दराज के बाजारों में आसानी पूर्वक बेचा जा सकता है।

वर्गीकरण : कद्दू परिवार की लत्तर वाली सब्जियों को मुख्य दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. आग पर पकाकर खायी जाने वाली कद्दू परिवार की लत्तर वाली सब्जियाँ : इस वर्ग में ऐसी सब्जियों को रखा गया है जिनको सदैव आग पर पकाकर ही सब्जी के रूप में खाया जाता है। इनकी आप

भुजिया, रसदार, सब्जी, कोफ्ता तथा पकौड़ा भी बना सकते हैं। जैसे कद्दू, लौकी, नेनुआ, झिंगली, करैला, सीस कुम्हड़ा, टिन्डा, चप्पन कद्दू तथा चठैल मुख्य हैं। परवल की खोवा भरी मिठाई तथा कुन्दरू का जायेकेदार आचार सबके मन को हर लेता है।

2. कच्ची, बिना पकाये खायी जाने वाली कद्दू परिवार की लत्तरवाली सब्जियाँ : इस वर्ग में ऐसी सब्जियों को रखा गया है, जिनको कच्ची अवस्था में सलाद के रूप में भोजन के साथ या बाद में खाया जाता है। जैसे : खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज इत्यादि। इस सब्जियों के उपयोग की प्रधानता फल की तरह है।

उत्पादन वृद्धि के तरीके

जलवायु : लत्तरवाली सब्जियाँ गर्मी मौसम अधिक पसन्द करती हैं। औसत तापक्रम 60–85° फारेनहाइट होना चाहिए। विशेष नमी से कीड़े एवं व्याधियों का प्रकोप बढ़ जाता है। शुष्क एवं विशेष गर्म जलवायु में फलन कम हो जाता है तथा लतायें सुखने लगती हैं।

भूमि एवं उसकी तैयारी

ये सब्जियाँ किसी भी प्रकार की मिट्टी में उगायी जा सकती है, परन्तु इनकी अच्छी पैदावार के लिए जल निकासयुक्त दोमट, बलुई दोमट मिट्टी जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश हो, अधिक उपयुक्त होती है।

खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा अन्य जुताईयाँ देशी हल से करना चाहिए। बुआई के एक महीना पहले खेत में गोबर की सड़ी खाद अथवा कम्पोस्ट (200-250 क्विंटल प्रति हेक्टर) की दर से अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

उन्नत किस्में : व्यवसायिक दृष्टि से लत्तरवाली सब्जियों की उन्नत किस्में निम्नलिखित है–

कद्दू : राजेन्द्र चमत्कार, ढोली सफेद, पूसा मंजरी, पूसा मेघदूत (संकर), पूसा समर प्रौलिफिक लौंग एवं राउण्ड तथा स्थानीय प्रभेद।

करैला : पूसा दो मौसमी, बारहमासी, जौनपुरी, स्थानीय प्रभेद।

कोहड़ा : ग्लोब परफेक्शन, लाल कोहड़ा बड़ा गील।

नेनुआ : राजेन्द्र नेनुआ–1, पूसा चिकनी, सतपुतिया।

परवल : राजेन्द्र परवल–1, राजेन्द्र परवल–2, हिल्ली, डन्डाली, निमियाँ, सफेदा, गुथलिया, स्वर्ण रेखा, स्वर्ण अलौकिक, संतीखवा।

खीरा : बालम खीरा, पूसा संजोग, जापानी लौंग ग्रीन।

झिंगनी : पूसा नसदार, सतपुतिया।

खरबूज : सूगर बेबी, पूसा महारस, दुर्गापुर मधु, पंजाब संकर।

तरबूज : सूगर बेबी, अर्का मानिक, अर्का ज्योति, दुर्गापुर केसर।

बुआई का समय एवं विधि : बुआई का समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग होता है। परन्तु रबी मौसम के लिए बीज दिसम्बर से फरवरी तक बोना चाहिए।

इन सब्जियों के बीज थाले या नाले में बोये जाते हैं। थाला या नाला में एक स्थान पर दो-तीन बीज बोना चाहिए। बाद में एक-दो पौधा ही रखना चाहिए। थाले में नमी बनाकर तथा बीज को भींगाकर अंकुरित कर लगाना चाहिए।

लगाने की दूरी एवं बीजदर : कद्दू, कोहड़ा, नेनुआ, झिंगनी, परवल

खरबूज, तरबूज : 1.5 से 2 मी० दोनों ओर से

खीरा, करैला : 1 से 1.5 मी० दोनों ओर से

अपेक्षाकृत कम दूरी हर मौसम में विशेष लाभदायक होती है।

बीज दर : कद्दू, नेनुआ, कोहड़ा, करैला (6-8) किलोग्राम प्रति हेक्टर खीरा, झिंगनी – 2.5-3.5 किलोग्राम प्रति हेक्टर।

खाद एवं उर्वरक : रबी मौसम में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग सिंचाई सुविधा के अनुसार करना चाहिए। जैविक खाद का व्यवहार से मिट्टी की स्थिति सुधरती है तथा नमी बनी रहती है। खाद एवं उर्वरक की औसत मात्रा निम्न प्रकार देना चाहिए।

कद्दू, कोहरा, नेनुआ : 200 क्विंटल कम्पोस्ट, 150-200 किग्रा० यूरिया, 250-300 किग्रा० सिंगल सूपर फॉस्फेट, 60 किग्रा० पोटाश प्रति हेक्टर।

करैला, खीरा, झिंगनी : 150-200 क्विंटल कम्पोस्ट, 100-125 किग्रा० यूरिया, 200-250 किग्रा० सिंगल सूपर फॉस्फेट, 60 किग्रा० पोटाश/हेक्टर। कद्दू, कोहरा तथा नेनुआ में नेत्रजन तीन किस्तों में उपरिवेशन के रूप में तथा करैला, खीरा, झिंगनी में दो किस्तों में देना अधिक लाभदायक होता है।

सिंचाई : 10 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

निकाई-गुड़ाई : सिंचाई के बाद उपयुक्त समय पर निकाई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रित रहता है और नमी भी बनी रहती है।

सहारा देना : लत्तीदार सब्जियों में सहारा देना अतिआवश्यक है। इसके लिए बाँस गाड़कर मचान बनाना चाहिए। सहारा देने से लत्तरवाली सब्जियों में वृद्धि अच्छी होती है एवं अधिक फल लगते हैं। ऐसा करने से पौधों को धूप एवं हवा अच्छी तरह मिलती है। इस तरह कीड़े-मकोड़े एवं रोगों का प्रकोप भी कम होता है। अत: सहारा देने के काम को अच्छी ढंग से करना चाहिए। इसी पर अधिक फलन एवं अच्छी उपज निर्भर करती है। कुछ लत्तीदार सब्जियों जैसे नेनुआ, परवल, कुंदरी आदि की लत्तियाँ जमीन की संपर्क में आकर गाँठों से जड़ निकल आती है और व्यक्तिगत पौधे के समान व्यवहार करने लग जाते हैं, जिससे शाकीय वृद्धि अधिक होती है और फलन कम होता है। अत: इस अवगुण से बचाने के लिए पौधों को सहारा देना आवश्यक है।

उपज : उचित ढंग से खेती करने पर निम्नलिखित औसत उपज प्राप्त किये जा सकते हैं :

कद्दू, कोहड़ा, परवल : 125 से 150 क्विंटल/हेक्टर

नेनुआ, खीरा : 80-90 क्विंटल/हेक्टर

करैला, झिंगनी : 60-65 क्विंटल/हेक्टर

पौधा संरक्षण : लत्तीदार सब्जियों में लगने वाले मुख्य कीड़ों, लाल कीड़ा, फल की मक्खी, एपीलैकना बीटल एवं जौसिड है। ये पत्तियों, तना, फूल तथा फल खाते हैं एवं पत्तियों के रस चूसते हैं जिससे फसल को भारी नुकसान पहुंचता है। फलत: उपज सीधे प्रभावित होताहै, इसके नियंत्रण के लिए कार्बोरिल 50 प्रतिशत : डब्लू० पी० 1.5 से 2 किलोग्राम या इन्डोसल्फान 35 ई०सी० 1 से 1.5 लीटर या लिण्डेन 1 से 1.5 लीटर प्रति हेक्टर की दर से व्यवहार करना चाहिए।

लत्तीदार सब्जियों में एन्थ्रेक्नोज, मोजैक, पर्णदाग एवं जड़ गलन नामक बीमारियाँ मुख्य रूप से लगती है। इन्थ्रेक्नोज की बीमारी में पत्तियों एवं तनों पर धब्बे हो जाते हैं एवं काले पड़ जाते हैं। इस रोग से बचाने के लिए इमीसान 6 का 2 ग्राम अथवा वैविस्टीन 1 ग्राम प्रति किग्रा० बीज की दर से बीजोपचार करके ही बीज बोना चाहिए। खड़ी फसल में लगे रोग से बचाव के लिए इन्डोफिल एम०–45, 2 से 2.5 किग्रा० प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। मोजैक नामक बीमारी में पत्ते सिकुड़ जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए प्रतिरोधी किस्मों के बीजों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यह विषाणु जनित रोग है जिसका फैलाव कीटों द्वारा होता है। पर्णदाग की बीमारी में पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए इन्डोफिल एम०–45, 2 से 2.5 किग्रा० प्रति हेक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर छिड़काव 10-15 दिनों पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करना चाहिए। इससे बचाव के लिए बीज को इमीसान 6 या थिरम या वैविस्टीन द्वारा उपचारित कर ही बोना चाहिए।

❑

नक्षत्र एवं उनकी अवधि

क्र०	नक्षत्रों के नाम	कब से		कब तक	
1	उत्तराषाढ़	11	जनवरी	20	जनवरी
2	श्रवणा	21	जनवरी	5	फरवरी
3	घनिष्ठा	6	फरवरी	18	फरवरी
4	शतभिषा	19	फरवरी	3	मार्च
5	पूर्व भाद्र	4	मार्च	17	मार्च
6	उत्तरभाद्र	18	मार्च	30	मार्च
7	रेवती	31	मार्च	13	अप्रैल
8	अश्विनी	14	अप्रैल	26	अप्रैल
9	भरणी	27	अप्रैल	10	मई
10	कृत्तिका	11	मई	24	मई
11	रोहिणी	25	मई	7	जून
12	मृगशिरा	8	जून	21	जून
13	आद्रा	22	जून	5	जुलाई
14	पुनर्वस	6	जुलाई	19	जुलाई
15	पूष	20	जुलाई	2	अगस्त
16	आश्लेषा	3	अगस्त	16	अगस्त
17	मघा	17	अगस्त	29	अगस्त
18	पूर्वफल्गुनी	30	अगस्त	13	सितम्बर
19	उत्तरफल्गुनी	14	सितम्बर	26	सितम्बर
20	हस्त	27	सितम्बर	9	अक्टूबर
21	चित्रा	10	अक्टूबर	22	अक्टूबर
22	स्वाती	23	अक्टूबर	4	नवम्बर
23	विशाखा	5	नवम्बर	19	नवम्बर
24	अनुराधा	20	नवम्बर	2	दिसम्बर
25	ज्येष्ठा	3	दिसम्बर	27	दिसम्बर
27	पूर्वाषाढ़	28	दिसम्बर	10	जनवरी

अध्याय 20

ओल (जिमीकन्द) की वैज्ञानिक खेती

डा० पी० पी० सिंह
मुख्य वैज्ञानिक (कन्दमूल)
तिरहुत कृषि महाविद्यालय, ढोली, मुजफ्फरपुर

ओल यानी जिमीकन्द 'एरेसी' कुल का एक सर्वपरिचित पौधा है जिसे भारतवर्ष में सूरन, बालुकन्द, अरसधाना, कन्द तथा चीना आदि अनेक नामों से जाना जाता है । इसकी खेती भारत में प्राचीन काल से होती आ रही है तथा अपने गुणों के कारण यह सब्जियों में एक अलग स्थान रखता है । बिहार में इसकी खेती गृह वाटिका से लेकर बड़े पैमाने पर हो रही है तथा यहाँ के किसान इसकी खेती आज नगदी फसल के रूप में कर रहे हैं । ओल में पोषक तत्वों के साथ ही अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं जिनके कारण इसे आयुर्वेदिक औषधियों में उपयोग किया जाता है । इसे बवासीर, खुनी बवासीर, पेचिश, ट्यूमर, दमा, फेफड़े की सूजन, उदर पीड़ा, रक्त विकार में उपयोगी बताया गया है । इसकी खेती हल्के छायादार स्थानों में भी भली-भांति की जा सकती है जो किसानों के लिए काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है ।

मिट्टी का चुनाव एवं खेत की तैयारी

ओल के सर्वोतम विकास एवं अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उत्तम जल निकास वाली हल्की और भुरभुरी मिट्टी सर्वोतम है । इस फसल के लिए बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश पदार्थ का प्रचुर मात्रा हो, उपयुक्त पायी गयी है खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और दो-तीन बार देशी हल से अच्छी तरह जोत कर मिट्टी को मुलायम तथा भुरभुरी बना लेना चाहिए । प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पट्टा चलाकर समतल कर दें ।

यह प्रभेद आज पूरे भारत में फैल गया है, साथ ही हमारे बिहार राज्य में पूरी तरह छा गया है । यह 200-215 दिनों में तैयार होने वाली प्रजाति है। इस प्रजाति की औसत उपज 40-50 टन/हे. है। इस प्रभेद के कन्द चिकने सतह वाले होते हैं। इसमें कैल्शियम आक्जेलेट कम मात्रा में पाया जाता है जिसके कारण इसमें कबकबाहट नहीं होता है। यही कारण है कि इसका व्यवहार विभिन्न व्यंजनो के रूप में होता है।

बीज एवं बुआई

ओल का प्रवर्धन वानस्पतिक विधि द्वारा किया जाता है जिसके लिए पूर्ण कन्द या कन्द को काट कर लगाया जाता है। बुआई हेतु 250-500 ग्राम का कन्द उपयुक्त होता है। यदि उपरोक्त वजन के पूर्ण कन्द उपलब्ध हो तो उनका ही उपयोग करें। ऐसा करने पर प्रस्फुटन अग्रिम होता है जिससे फसल पहले तैयार एवं अधिक उपज की प्राप्ति होती है। यदि कन्द का आकार बड़ा हो तो उसे 250-500 ग्राम के टुकड़ों में काट कर बुआई करना चाहिए। परन्तु कन्द को काटते समय इस बात का धयान रखें कि प्रत्येक टुकड़े में कम से कम कालर (कलिका) का कुछ भाग अवश्य रहे।

उपरोक्त कन्दों को बोने से पूर्व कन्दोपचार करना चाहिए। इसके लिए इमीसान 5 ग्राम एवं स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 0.5 ग्राम को प्रति लीटर पानी में घोल कर कन्द को 25-30 मिनट तक या ताजा गोबर का गाढ़ा घोल बनाकर उसमें 2 ग्राम कार्बोन्डाजिम (वेविस्टीन) पाउडर प्रति लीटर घोल में मिलाकर कन्द को उपचारित कर छाया में सुखाने के बाद ही लगायें। उपरोक्त आकार के कन्द लगाने पर इनकी बढ़वार 8-10 गुणा के बीच होता है। बीज दर कन्द के आकार एवं बुआई की दूरी पर निर्भर करता है।

कन्द का वजन	दूरी	बीज दर (क्विंटल/हे.)
250 ग्राम	75 × 75 सें0मी0	40-50
500 ग्राम	75 × 75 सें0मी0	70-80
250 ग्राम	1 × 1 मीटर	25
500 ग्राम	1 × 1 मीटर	50

बुआई का समय :अप्रैल-जून

लगाने की विधि : दो विधियों द्वारा ओल की बुआई की जाती है :

1. चौरस खेत में 2. गड्ढों में

1. चौरस खेत में ओल की बुआई करने के लिए अन्तिम जुताई के समय गोबर की सड़ी खाद एवं रासायनिक उर्वरक में नेत्रजन एवं पोटाश की 1/3 मात्रा एवं फास्फोरस की पूर्ण मात्रा को खेत में मिलाकर जुताई कर देते हैं। उसके बाद कन्दों के आकार के अनुसार 75 से 90 सें0मी0 की दूरी पर कुदाल द्वारा 20 से 30 सें0मी0 गहरी नाली बनाकर कन्दों की बुआई कर दी जाती है तथा नाली को मिट्टी से ढक दिया जाता है।
2. **गड्ढों में :** इस विधि से अधिकांशत: ओल की बुआई की जाती है । इस विधि में 75 × 75 × 30 सें.मी. या 1.0 × 1.0 मी. × 30 से.मी. चौड़ा एवं गहरा गड्ढा खोद कर कन्दों की रोपाई की जाती है । रोपाई के पूर्व निर्धारित मात्रा में खद एवं उर्वरक मिलाकर गड्ढा में डाल दें । कन्दों को बुआई के बाद मिट्टी से पिरामिड के आकार में 15 सें0मी0 उँचा कर दें। कन्द की बुआई इस प्रकार करते हैं कि कन्द का कलिका युक्त भाग उपर की तरु सीधा रहे ।

खाद एवं उर्वरक

ओल की अच्छी उपज हेतु खाद एवं उर्वरक का इस्तेमाल करना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए 10-15 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद, नेत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश 80:60:80 कि.ग्रा./हे. के अनुपात में प्रयोग करें । बुआई के पूर्व गोबर की सड़ी खाद को अन्तिम जुताई के समय खेत में मिला दें। फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा, नेत्रजन एवं पोटाश की 1/3 मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में तथा शेष बची नेत्रजन एवं पोटाश को दो बराबर भागों में बाँट कर कन्दों के रोपाई के 50-60 तथा 80-90 दिनों बाद गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाते समय प्रयोग करें । उर्वरकों का व्यवहार तालिका-2 के अनुसार करें।

तालिका : 2

उर्वरक	उर्वरक की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	बुआई के समय (कि.ग्रा./हे.)	बुआई के बाद (कि.ग्रा./हे.)	
			50.-60 दिन	80-90 दिन
यूरिया	180.00	60.00	60.00	60.00
सिंगल सुपर फास्फेट	375.00	375.00	-	-
म्यूरेट ऑफ पोटाश	160.00	53.30	53.30	53.30

गड्ढों में ओल लगाते समय प्रति गड्ढा 2 से 3 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद 18 ग्राम यूरिया, 38 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 15 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 5 ग्राम ब्लीचिंग पाउडर का प्रयोग करें। यूरिया की आधी मात्रा 9 ग्राम एवं अन्य उर्वरकों की पूरी मात्रा को मिट्टी में मिलाकर गड्ढों में भर दें। शेष आधी बची यूरिया को प्ररोह निकलने के 80-90 दिन बाद प्रति गड्ढा की दर से व्यवहार करें।

मल्चींग

बुआई के बाद पुआल अथवा शीशम की पत्तियों से ढक देना चाहिए जिससे ओल का अंकुरण जल्दी होता है, खेत में नमी बनी रहती है तथा खर-पतवार कम होने के साथ ही अच्छी उपज प्राप्त होती है ।

जल प्रबंधन

यदि खेत में नमी की मात्रा कम हो तो एक या दो हल्की सिंचाई अवश्य कर दें । वर्षा आरम्भ होने तक खेत में नमी की मात्रा को बनाये रखें । बरसात में पौधों के पास जल जमाव न होने दें।

निकाई-गुड़ाई

बुआई के 25-30 दिनों के अंदर पौधे उग जाते हैं । 50-60 दिनों बाद पहली तथा 80-90 दिनों बाद दूसरी निकाई करें । निकाई के समय पौधों पर मिट्टी भी चढ़ाते जायें ।

फसल चक्र :

ओल-गेहूँ, ओल-मटर, ओल-अदरक, ओल-प्याज।

अन्तर्वर्ती खेती :

चूँकि इस फसल का अंकुरण देर से होता है । इसलिए पौधों के प्रारम्भिक विकास की अवधि में अन्तर्वर्ती फसलें जैसे भिण्डी, बोड़ा, मूँग, कलाई, मक्का, खीरा, कद्दू आदि फ्रसलें सफलतापूर्वक ली जा सकती है । अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि इसकी खेती लीची एवं अन्य फलों के बागों में अन्तर्वर्ती फसल के रूप में सफलतापूर्वक किया जा सकता है ।

फसल सुरक्षा

झुलसा रोग : यह ओल का बैक्टीरिया जनित रोग है जिसका आक्रमण पौधों की पत्तियों पर सितम्बर-अक्टूबर माह में अधिक होता है । पत्तियों पर छोटे-छोटे वृताकार हल्के-भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में सूखकर काले पड़ जाते हैं एवं पत्तियाँ सूख कर झुलस जाती है। कंदों की वृद्धि नहीं हो पाती है।

रोग का लक्षण आते ही बैभीस्टीन अथवा इण्डोफिल एम0-45 का 2.5 मि.ली. प्रति ली. की दर से 2-3 छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करें ।

तना गलन : इस रोग का आक्रमण उन क्षेत्रों में अत्यधिक होता है जहाँ पानी का जमाव ज्यादा होता है तथा लगातार एक ही खेत में ओल की खेती की जा रही हो । इस रोग का प्रकोप अगस्त-सितम्बर माह में अधिक होता है । यह मृदा जनित रोग है । इस रोग का लक्षण कालर भाग पर दिखलाई पड़ता है तथा पौधा पीला पड़कर जमीन पर गिर जाता है ।

इसके रोकथाम हेतु उचित फसल चक्र अपनायें । जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। कन्द लगाने से पूर्व उसे बतायी गयी विधि द्वारा उपचारित कर लें । कैप्टान दवा के 2% के घोल से 15 दिनों के अंतराल पर दो- तीन बार पौधे के आस-पास भूमि को भींगा दें ।

खुदाई एवं भण्डारण

बुआई के सात से आठ माह के बाद जब पत्तियाँ पीली पड़ कर सूखने लगती है तब फसल खुदाई हेतु तैयार हो जाती है । खुदाई के पश्चात् कंदों की अच्छी तरह मिट्टी साफ कर दो-तीन दिन धूप में रख कर सुखा लें । कटे या चोट ग्रस्त कंद को स्वस्थ कंदों से अलग कर लें । इसके बाद कंद को किसी हवादार भण्डार गृह में लकड़ी के मचान पर रख कर भण्डारित करें । इस प्रकार ओल को पाँच से छः माह तक आसानी से भण्डारित किया जा सकता है।

लाभ

यदि उपरोक्त बातों को धयान में रखकर ओल की खेती किया जाये तो इससे रु० 1,25,000/- से 1,50,000/- तक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है तथा किसान अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं ।

❑

अध्याय 21

सहजन की वैज्ञानिक खेती

सहजन बिहार के किसानों के लिए एक बहुवर्षिक सब्जी देनेवाला जाना-पहचाना पौधा है। गांव देहात में सहजन बिना किसी विशेष देखभाल के किसान अपने घरों के आसपास दो-एक पेड़ लगाकर रखते हैं, जिसके फल का उपयोग वे साल में एक बार जाड़े के दिनों में सब्जी के रूप में करते हैं।

ऐसा देखा जा रहा है कि बाजार में सहजन का फूल, छोटा-नन्हा कोमल सहजन से लेकर बड़ा और मोआ सहजन भी ऊँचे दामों में बिकता है। दक्षिण भारतीय लोग सहजन के फूल, फल, पत्ती का उपयोग अपने विभिन्न प्रकार के व्यंजनों में सालों भर करते हैं भारत ही नहीं बल्कि फिलीपिंस, हवाई, मैक्सिको, श्रीलंका, मलेशिया आदि देशों में सहजन विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता है। सहजन के बीज से तले भी निकाला जाता है। बीज को उबालकर सुखाने और फिर पाउडर बनाकर विदेशों में निर्यात भी किया जा रहा है। सहजन में औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में है और इसके पौधे के सभी भागों का उपयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता है।

सहजन भारतीय मूल का Moringaceae परिवार का सदस्य है। इसका वनस्पतिक नाम Moringa olifera है। सामान्यतया यक एकबहुवार्षिक, कमजोर तना और छोटी-छोटी पत्तियों वाला लगभग दस मीटर से भी ऊँचा पौधा है। यह कमजोर जमीन पर भी बिना सिंचाई के सालों भर हरा-भरा और तेजी से बढ़ने वाला पौधा हे। हाल के दिनों में सहजन का साल में दो बार फलने वाला वार्षिक प्रभेद तैयार किया गया है, जो न सिर्फ उत्पादन ज्यादा देता है बल्कि यह प्रोटीन, लवण, लोहा, विटामिन-बी. और विटामिन-सी. में भरपूर है। बिहार के किसानों और खासकर अपनी भू-भागीय पसंद के कारण सहजन दियारा क्षेत्र के किसानों के लिए उनकी फसल प्रणाली का एक आर्थिक महत्व का उपयुक्त फसल हो सकता है।

जलवायु : सामान्यतया 25-30°C के औसत तापमान पर सहजन के पौधा का हरा-भरा व काफी फैलने वाला विकास होता है। यह ठंढ को भी सहता है। परन्तु पाला से पौधा को नुकसान होता है। फूल आते समय 40°C से ज्यादा तापमान पर फूल झड़ने लगता है। कम या ज्यादा वर्षा से पौधे को कोई नुकसान नहीं होता है। यह विभिन्न पारिस्थितिक अवस्थाओं में उगने वाला एक ढीठ स्वभाव का पौधा है।

मिट्टी : सभी प्रकार की मिट्टियों में सहजन की खेती की जा सकती है। यहां तक कि बेकार, बंजर और कम उर्वरा भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। परन्तु व्यवसायिक खेती के लिए साल में दो बार फलनेवाला सहजन के प्रभेदों के लिए 6-7.5 पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी बेहतर पाया गया है।

सहजन प्रभेद : सहजन का साल में दो बार फलने वाले प्रभेदों में पी.के.एम.-1 पी.के.एम.-2, कोयेंबटूर-1 तथा कोयेंबटूर-2 प्रमुख हैं। इसका पौधा 4-6 मीटर ऊँचा होता है तथा 90-100 दिनों में इसमें फूल आता है। जरूरत के अनुसार विभिन्न अवस्थाओं में फल की तुड़ाई करते रहते हैं। पौधे लगाने के लगभग 160-170 दिनों में फल तैयार हो जाता है। साल में एक पौधा से 65-170 दिनों में फल तैयार हो जाता है। साल में एक पौधा से 65-70 सेमी. लम्बा तथा औसतन 6.3 सेमी. मोटा, 200-400 फल (40-50 किलोग्राम)

मिलता है। यह काफी गूदेदार होता है तथा पकाने के बाद इसका 70 प्रतिशत भाग खाने योग्य होता है। इसके पौध से 4–5 वर्षों तक पेड़ी (Ratoon) फसल लिया जा सकता है। प्रत्येक वर्ष फसल लेने के बाद पौधे को जमीन से एक मीटर छोड़कर काटना आवश्यक है।

खेत की तैयारी : सहजन के पौध की रोपनी में गड्ढा बनाकर किया जाता है। खेत को अच्छी तरह खर पतवार से साफ–सफाई का 2.5 × 2.5 मीटर की दूरी पर 45 × 45 × 45 सेमी. आकार का गड्ढा बनाते हैं। गड्ढे के ऊपरी मिट्टी के साथ 10 किलोग्राम सड़ा हुआ गोबर का खाद मिलाकर गड्ढे को भर देते हैं। इससे खेत पौध के रोपनी हेतु तैयार हो जाता है।

प्रबर्द्धन : सहजन में बीज और शाखा के टुकड़ों दोनों से ही प्रबर्द्धन होता है। अच्छी फलन और साल में दो बार फलन के लिए बीज से प्रबर्द्धन करना अच्छा है। एक हेक्टेयर में खेती करने के लिए 500 ग्राम बीज पर्याप्त है। बीज को सीधे तैयार गड्ढों में या फिर पॉलीथीन बैग में तैयार कर गड्ढों में लगाया जा सकता है। पॉलिथीन बैग में पौध एक महीना में लगाने योग्य तैयार हो जाता है।

शस्य प्रबंधन : एक महने के तैयार पौध को पहले से तैयार किए गये गड्ढों में माह जुलाई–सितम्बर तक रोपनी कर दें। पौध जब लगभग 75 सेमी. का हो जाये तो पौध के ऊपरी भाग की खोटनी कर दें, इससे बगल से शाखाओं को निकलने में आसानी होगी। रोपनी के तीन महीने के बाद 100 ग्राम यूरिया + 100 ग्राम सुपर फास्फेट + 50 ग्राम पोटाश प्रति गड्ढा की दर से डालें तथा इसके तीन महीने बाद 100 ग्राम यूरिया प्रति गड्ढा का पुनः व्यवहार करें। सहजन पर किए गए शोध से यह पाया गया कि मात्र 15 किलोग्राम गोबर की खाद प्रति गड्ढा तथा एजोसपिरिलम और पी.एस.बी. (5 किलोग्राम/हेक्टेयर) के प्रयोग से जैविक सहजन की खेती, उपज में बिना किसी ह्रास के किया जा सकता है।

सिंचाई : अच्छे उत्पादन के लिए सिंचाई करना लाभदायक है। गड्ढों में बीज से अगर प्रबर्द्धन किया गया है तो बीज के अंकुरण और अच्छी तरह से स्थापन तक नमी का बना रहना आवश्यक है। फूल लगने के समय खेत ज्यादा सूखा या ज्यादा गीला रहने पर दोनों ही अवस्था में फूल के झड़ने की समस्या होती है।

पौधा संरक्षण : सहजन पर सबसे ज्यादा आक्रमण बिहार में भूआ पिल्लू नामक कीट से हें इसे अगर नियंत्रित नहीं किया जाय तो यह सम्पूर्ण पौधे की पत्तियों को खा जाता है तथा आसपास में भी फैल जाता है। अंडा से निकलने के बाद अपने नवजात अवस्था में यह कीट समूह में एक स्थान पर रहता हें बाद में भोजन की तलाश में यह सम्पूर्ण पौधों पर बिखर जाता है। इसके नियंत्रण के लिए सरल और देशज उपाय यह है कि कीट के नवजात अवस्था में सर्फ को घोलकर अगर इसके ऊपर डाल दिया जाय तो सभी कीट मर जाते हैं। वयस्क अवस्था में जब यह सम्पूर्ण पौधों पर फैल जाता है तो एकमात्र दवा डाइक्लोरोवास (नूभान) 0.5 मि.ली. एक लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करने से तत्काल लाभ मिलता है।

सहजन के दूसरे कीट में कभी–कभी फल पर फल मक्खी का आक्रमण होता है। इस कीट के नियंत्रण हेतु भी डाइक्लोरोवास (नूभान) 0.5 मि.ली. दवा एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर कीट का नियंत्रण होता है।

फल की तुड़ाई एवं उपज : साल में दो बार फल देनेवाले सहजन की किस्मों की तुड़ाई सामान्यतया फरवरी–मार्च और सितम्बर–अक्टूबर में होती है। प्रत्येक पौधे से लगभग 200–400 (40–50 किलोग्राम) सहजन सालभर में प्राप्त हो जाता है। सहजन की तुड़ाई बाजार और मात्रा के अनुसार 1–2 माह तक चलता है। सहजन के फल में रेशा आने से पहले ही तुड़ाई करने से बाजार में मांग बनी रहती है और इससे लाभ भी ज्यादा मिलता है।

सहजन का गुण एवं उपयोग : सहजन बहुउपयोगी पौधा है। पौधे के सभी भागों का प्रयोग भोजन, दवा औद्योगिक कार्यों आदि में किया जाता है। सहजन में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व व विटामिन है। एक अध्ययन के अनुसार इसमें दूध की तुलना में चार गुणा कैल्शियम और दो गुणा प्रोटीन, गाजर की तुलना में चार गुणा विटामिन ए, केला की तुलना में तीन गुणा पोटाशियम तथा संतरा की तुलना में सात गुणा विटामिन सी. है।

सहजन का फूल, फल और पत्तियों का भोजन के रूप में व्यवहार होता है। सहजन का छाल, पत्ती, बीज, गोंद, जड़ आदि से आयुर्वेदिक दवा तैयार किया जाता है, जो लगभग 300 प्रकार के बीमारियों के इलाज में काम आता है। सहजन के पौधा से गूदा निकालकर कपड़ा और कागज उद्योग के काम में व्यवहार किया जाता है।

भारत वर्ष में कई आयुर्वेदिक कम्पनी मुख्यत: ''संजीवन हरबल'' व्यवसायिक रूप से सहजन से दवा बनाकर (पाउडर, कैप्सूल, तेल बीज आदि) विदेशों में निर्यात कर रहे हैं।

दियारा क्षेत्र में सहजन के नये प्रभेदों की खेती को बढ़ावा देकर न सिर्फ स्थानीय व दूर-दराज के बाजारों में सब्जी के रूप में इसका सालों भर बिक्री कर आमदनी कमाया जा सकता है, बल्कि इसके औषधीय व औद्योगिक गुणों पर ध्यान रखते हुए किसानों के बीच में एक स्थायी दीर्घकालीन आमदनी हेतु सोच विकसित किया जा सकता है।

❑

सहजन बिना किसी विशेष देखभाल एवं शून्य लागत पर आमदनी देनी वाली फसल है। किसान भाई अपने घरों के आस-पास अनुपयोगी जमीन पर सहजन के कुछ पौधे लगाकर जहाँ उन्हें घर के खाने के लिए सब्जी उपलब्ध हो सकेगी वहीं इसे बेचकर आर्थिक सम्पन्नता भी हासिल कर सकते हैं।

सहजन लगायें, सज्जन कहलायें ।

अध्याय 22

फल व सब्जी परिरक्षण

डा० (श्रीमती) शोभा रानी
कार्यक्रम समन्वयक, कृषि विज्ञान केन्द्र, सरैया (मुजफ्फरपुर)

हमारे भोजन में फलों एवं सब्जियों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें विटामिन एवं खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। जरे हमारे शरीर को रोगों से रक्षा करते हैं। फल व सब्जी मौसमीय होते हैं साथ ही बहुत जल्दी खराब हो जाते हैं। सामान्यतया यह देखा गया है कि मौसम में फल-सब्जियों की इतनी उपज हो जाती है कि सम्पूर्ण उत्पाद खपत नहीं हो पाता है और अंत में बहुत ही सस्ते दरों पर बिकते हैं या बर्बाद हो जाते हैं। इन सब स्थितियों से बचने के लिए एक महत्वपूर्ण समाधान है–फल-सब्जियों का परिरक्षण अथवा संरक्षण।

परिरक्षण करने से हम उस मौसम में भी फल व सब्जी का सेवन कर सकते हैं जिस मौसम में ये ताजे रूप में बाजार में उपलब्ध नहीं होते। अत: सालों भर हर तरह के फल एवं सब्जी का उपयोग हम तभी कर सकते हैं जब इन्हें संरक्षित कर रखा जाए।

संरक्षण की बहुत सी सरल विधियाँ हैं जिन्हें हम घरों में अपनाकर विभिन्न प्रकार के उत्पाद तैयार कर सकते हैं जैसे–जैम, जेली, अचार, सॉस, मुरब्बा, स्क्वैश इतयादि। फल व सब्जियों को सुखाकर भी परिरक्षण किया जाता है। घर पर संरक्षित खाद्य पदार्थ अधिक पौष्टिक, मिलावट से रहित, स्वच्छ, सस्ते व स्वादिष्ट होते हैं।

संरक्षित उत्पादों का रंग, रूप, सुगन्ध एवं स्वाद तो आकर्षक होता ही है, साथ ही ये कम स्थान घेरते हैं इसलिए उन्हें कम खर्च में एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुगमता से पहुँचाया जा सकता है।

घरेलू स्तर पर परिरक्षण के लिए चीनी, नमक, तेल, मसालों, सिरका तथा रसायनिक पदार्थों का प्रयोग निर्धारित मात्रा में किया जाता है। रसायनिक पदार्थ (परिरक्षक) बाजार से खरीदा जा सकता है। यह आहार में फफूँदी नहीं लगने देता जिससे उत्पाद लम्बी अवधि तक बिना खराब हुए सही अवस्था में रखे जा सकते हैं।

परिरक्षकों के नाम तथा उपयोग :

1. **साइट्रिक एसिड :** जैम, जेली, मुरब्बा, स्क्वैश तैयार करने में इसका प्रयोग किया जाता है। साइट्रिक एसिड के स्थान पर नींबू के रस का भी प्रयोग किया जा सकता है।
2. **ग्लेशियल एसीटिक अम्ल :** अचार, चटनी, सॉस तैयार करने में इसका प्रयोग किया जाता है।
3. **सोडियम बेंजोएट :** सॉस, चटनी, स्क्वैश तैयार करने में इसका उपयोग किया जाता है। यह गहरे रंगीन खाद्य पदार्थों का परिरक्षण करता है।
4. **पोटाशियम मेटा-बाई-सल्फाइट :** हल्के रंगीन स्क्वैश तैयार करने में इसका उपयोग किया जाता है।

फलों व सब्जियों को सुखाना :

मौसम में उपलब्ध सब्जियों को खराब होने से बचाने के लिये सुखा कर रख सकते हैं और मौसम में महँगाई के समय प्रयोग कर सकते हैं। घरेलू स्तर पर सब्जियों को धूप में सुखाया जाता है। अगर उपलब्ध हो तो ओवन एवं मशीन का भी प्रयोग किया जाता है।

सुखाने से पहले सब्जियों को भली-भाँति धोकर स्टील के चाकू से छीलकर ½ से ¼ इंच के पतले टुकड़ों में काट लें और नमक के घोल में डाल दें ताकि वे काले न हो पाएँ। (अधिकांशत: सभी सब्जियों को भाप अथवा उबलते पानी में कुछ समय के लिए रखते हैं ताकि उनका रंग, सुगन्ध व पौष्टिकता सुरक्षित रह सके। इस विधि को ब्लॉचिंग कहते हैं।) सुखाने के बाद इन्हें नमी रहित साफ डिब्बों टीनों, काँच के जार और एलकेथिन के लिफाफों में रखा जा सकता है। समय-समय पर संग्रहीत सूखे पदार्थों का निरीक्षण करना आवश्यक है और कभी-कभी इन्हें धूप में रखना लाभकारी होता है।

सूखे हुए फलों व सब्जियों की प्रयोग विधि :

प्रयोग में लाने के पूर्व, पहले जल में भिगोना चाहिये। जल की मात्रा उतनी ही लेनी चाहिये जितनी वह आसानी से सोख लें। इन सूखी हुई सब्जियों को पकाने में कम समय लगता है और उसी जल में पकाना चाहिये जिसमें इन्हें भिगोया जाता है।

जेली बनाना : जेली बनाने में फलों के रस का ही प्रयोग होता है उसके गूदा का नहीं। फल न तो कच्चा होना चाहिये और न ही अधिक पका होना चाहिये। डंभक एवं खट्टे फलों का ही प्रयोग करना चाहिए जिसमें पेक्टिन अधिक हो। अमरूद, पपीता, आम, जामुन, करौंदा, सेब, नारंगी इत्यादि फलों की जेली तैयार की जा सकती है।

अमरूद की जेली

सामग्री :

अमरूद फल	-	1 किग्रा.
चीनी	-	750 ग्राम
साइट्रिक एसिड	-	3 ग्राम
पानी	-	1½ लीटर

विधि :

- ❑ अमरूद के फलों को अच्छी प्रकार से साफ पानी से धोकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें।
- ❑ इन टुकड़ों को भगोने में डाल कर इसमें पानी मिला दें और आँच पर रख कर गर्म करें।
- ❑ एक उबाल आने पर 30-35 मिनट के लिए धीमी आँच पर रखें। उसके बाद आँच से नीचे उतार दें और दो-तीन घंटे वैसे ही छोड़ दें।
- ❑ अब इसे महीन कपड़े से इस प्रकार छान लें कि गुदा व बीज रस में नहीं आए। छानते समय अमरूद को दबाए नहीं अन्यथा जेली पारदर्शक नहीं बन पाएगी।
- ❑ रस में चीनी और साइट्रिक एसिड डालकर गर्म करें व एक उबाल आने पर पतले कपड़े से छान लें। साइट्रिक एसिड के बदले 2-3 नींबू का रस डाल सकते हैं।
- ❑ छाने रस को फिर आंच पर रखें और पकाएँ।
- ❑ जब करीब एक-तिहाई भाग बच जाय तो समझें कि अब जेली तैयार होने वाला है जिसकी जाँच कर लेनी चाहिए। इसके लिए एक शीशे के ग्लास में पानी लेकर इस उबले रस की थोड़ी मात्रा चम्मच से पानी में डालें। यदि तैयार पदार्थ ग्लास की पेंदी में बैठ जाय तो समझें कि जेली तैयार है और उबालना बंद कर दें। यदि घोल पानी में घुल जाय तो और उबालने की आवश्यकता है। ऐसे भी जेली तैयार होने पर चम्मच में लेने पर जमना शुरू हो जाता है।
- ❑ जेली को थोड़ा ठंढा होने दें। उसके बाद चौड़े, मुँह वाले बोतल में, जो पहले से ही पानी में उबाला गया हो, जेली को रख दें।
- ❑ करीब बारह घंटे के बाद जेली की ऊपरी परत पर करीब 0.5 सेमी. पिघला हुआ मोम डाल कर बोतल को सील कर रख दें।

करौंदे की जेली

आवश्यक सामग्री :

करौंदा (पका फल)	– ½ किग्रा.
करौंदा (कच्चा फल)	– ½ किग्रा
चीनी	– 850 ग्राम
पानी	– 1½ लीटर

विधि :

फलों को भली-भाँति धोकर, छिलकर दो टुकड़ों में काट लें व बीज निकाल लें।

- ❑ इन टुकड़ों को भगोने में डालकर इसमें पानी मिला दें और आँच पर चढ़ाएँ।
- ❑ जब पानी खौलने लगे तो इसको 30-40 मिनट तक उबलने दें। फिर आँच पर से उतार लें।
- ❑ अब इसे महीन कपड़े से छान लें।
- ❑ छने हुए पेक्टिन युक्त रस में बताई गई चीनी को मात्रा मिलाएँ और दोबारा आँच पर चढ़ा दें।
- ❑ मध्यम आँच पर पकायें। जब खौलते-खौलते करीब एक-तिहाई भाग बच जाय तो समझना चाहिये कि जेली तैयार हो गई है।
- ❑ अब इसका चम्मच परीक्षण करके जाँच कर लेनी चाहिये।
- ❑ परीक्षण सही होने पर जेली को उतार दें और साफ व सुखे जार में रख कर सील कर दें।

टमाटर का सॉस

आवश्यक सामग्री :

टमाटर – 1 किग्रा.,
अदरक – 10 ग्राम,
चीनी – 75 ग्राम,
लाल मिर्च – 5 ग्राम,
जीरा – 5 ग्राम,
(इलायची, दालचीनी, जाविशि, लौंग)
सोडियम बेन्जोएट – 0.8 ग्राम
ग्लेशियल एसीटिक एसिड – 3 मि.ली.
अथवा, सिरका – 50 ग्राम
प्याज – 1 छोटा सा,
लहसुन – 10 ग्राम
नमक – 10 ग्राम
काली मिर्च – 3 ग्राम
गरम मसाला – 5 ग्राम

विधि :

- ❑ पके हुए लाल रंग के स्वस्थ टमाटर लें और पानी में अच्छी तरह धोकर काट लें।
- ❑ प्याज, लहसुन, अदरक को थोड़ा मोटा ही, दरदरा पीस लें।
- ❑ सभी मसाले पीस लें। बहुत बारीक नहीं पीसना है।
- ❑ टमाटरों को किसी बड़े बरतन में या प्रेशर कुकर में डालकर पकाइये और छलनी में से छानकर रस निकाल लें। इस प्रकार से छानना चाहिये ताकि टमाटर का बीज व छिलका नहीं आए।
- ❑ अब इसे आँच पर चढ़ा दें।
- ❑ चीनी, नमक को छोड़ कर प्याज, लहसुन, अदरक एवं बाकी सभी मसालों की एक पोटली बाँधकर रस में डाल दीजिए और पोटली को बीच-बीच में दबाते रहें।) ताकि धीरे-धीरे मसालों का रस व सुगन्ध उसमें जाता रहे। सुगन्ध उसमें जाता रहे।

- ❑ 1/3 चीनी (एक-तिहाई) डाल कर पकाये।
- ❑ गाढ़ा होने पर बचा चीनी मिला दीजिये।
- ❑ जब रस गाढ़ा होकर करीब तीसरा हिस्सा रह जाये तो मसालों की पोटली को अच्छी तरह निचोड़ कर निकाल लें व शेष चीनी और ग्लेशियल एसिटिक एसिड या सिरका डाल कर पकायें।
- ❑ नमक मिला कर इसे और गाएा करें। प्लेट टेस्ट आने पर आँच से उतार लें अर्थात् प्लेट में डालने पर चारों तरफ से पानी न निकले तो समझें कि सॉस तैयार हो गया है।
- ❑ थोड़ी सी सॉस में सोडियम बेन्जोएट मिलाकर पूरे सॉस में मिला दें। इसे तुरन्त साफ व सुखी काँच की बोतलों में भर लें।
- ❑ बोतल के ऊपर करीब डेढ़ इंच जगह छोड़ कर ढक्कन लगा दें।

हरे आम का स्क्वैश

आवश्यक सामग्री :

कच्चा आम का रस	– 1 लीटर
चीनी	– 1.5 किलो
पानी	– 750 ग्राम
साइट्रिक एसिड	– 12 ग्राम
पोटाशियम मेटाबाई सल्फाइट	– 1.5 ग्राम

विधि :

- ❑ फलों को धोकर, छीलकर, छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें व उसमें पानी डालकर किसी बड़े बरतन या प्रेशर कुकर में उबालें।
- ❑ जब गुदा पूर्ण मुलायम हो जाए तो उसे पूरा मथ दें एवं किसी मजबूत, पतले कपड़े में दबाकर छानकर रस निकाल लें।
- ❑ पानी में चीनी डालकर गर्मकर चासनी तैयार कर लें। चासनी में साइट्रिक एसिड घुलाकर डाल दें और पतले कपड़े से छान लें।
- ❑ जब चासनी ठंढी हो जाए तो उसमें रस मिला दें।
- ❑ अन्त में पोटाशियम मेटाबाई सल्फाइट को अलग से थोड़े से घोल में घुलाकर पूरे स्क्वैश में मिला दें।
- ❑ आवश्यकतानुसार हरे आम का रंग एवं एसेन्स का प्रयोग कर सकते हैं।
- ❑ स्क्वैश को साफ एवं सुखे बोतलों में ऊपर से करीब 2 इंच छोड़कर भर दें एवं कार्क व मोम से अच्छी तरह सील कर दें।

नींबू का स्क्वैश

आवश्यक सामग्री :

नीबू का रस	– 1 लीटर
पानी	– 1 लीटर
चीनी	– 2 किलो ग्राम
पोटाशियम मेटावाईसल्फाइट	– 2 ग्राम

विधि :

- ❑ पूरे पके हुए नींबू धोकर, पोंछ लें व सूखे बर्तन में रस निकाल कर छान लें।
- ❑ पानी में चीनी मिलाकर उबालें ताकि चीनी अच्छी तरह घुल जाए।

- ❑ अब इसे आंच से उतार कर ठंढा होने दें।
- ❑ ठंढा होने पर नींबू के रस व चीनी के घोल को मिला दें।
- ❑ दो-तीन चम्मच नीबू के रस में पोटाशियम मेटाबाई-सल्फाइट घोल कर स्क्वैश में मिला दें।
- ❑ स्क्वैश तुरन्त साफ व सूखी बोतलों में ऊपर से करीब 2 ईंच खाली जगह छोड़ कर भर दें व ढक्कन लगा दें।

जैम बनाना

जैम विभिन्न प्रकार के फलों एवं सब्जियों के गूदों से बनाया जाता है। साफ तथा स्वादिष्ट जैम बनाने के लिए ताजे, ठीक पके हुए (अधिक पके फल नहीं) दाग रहित और सुगन्धित फल लेने चाहिये। आम, अनानास, पपीता, केला, सेब, नाशपाती, आँवला, आड़ू, बेल, कटहल, जामुन, शहतूत, अंजीर आदि फलों से जैम तैयार किया जा सकता है। कई फलों के मिश्रण से भी जैम बना सकते हैं।

प्लेट टेस्ट : जैम, सॉस, चटनी इत्यादि बनाते समय अन्तिम बिन्दु प्लेट टेस्ट द्वारा मालुम किया जा सकता है। जब सारा पदार्थ पकाते समय गाढ़ा हो जाए तो थोड़ा सा पदार्थ प्लेट पर डालें। अगर इस पदार्थ के चारों तरफ पानी निकलता हुआ दिखाई नहीं देता है व प्लेट को टेढ़ा करने पर सारा पदार्थ इकट्ठा चलता है तो समझना चाहिये कि यह अन्तिम बिन्दु पर पहुँच गया है और इसे जार में भरा जा सकता है।

सेब का जैम

आवश्यक सामग्री :

खट्टे सेब - 1 किग्रा., चीनी – 1 किग्रा.
साइट्रिक एसिड – 3 ग्राम, पानी – ½ लीटर

विधि :

- ❑ कुछ खट्टे किस्म के ताजे व स्वस्थ सेब लें। इन्हें धोकर व छील कर कद्दूकस कर लें।
- ❑ इन्हें स्टील के भगोने में थोड़ा सा पानी डाल कर पका लें ताकि फल नर्म हो जाए। इन्हें स्टील के कलछी से चलाते रहें और कुचल कर गूदा तैयार कर लें।
- ❑ रस गूदे में चीनी मिला का एक घन्टे के लिए रख छोड़े।
- ❑ अब इसे तेज आँच पर पकायें।
- ❑ जब यह जैम की तरह गाढ़ा होने लगे तो इसमें साइट्रिक एसिड डाल दें।
- ❑ गाढ़ा होने पर प्लेट निरीक्षण करके देखिये। थोड़ा सा जैम प्लेट पर रखें और उसे हिलायें, यदि जैम फैले नहीं तो आँच से नीचे उतार लें।
- ❑ गर्म-गर्म जैम को अच्छी तरह से गर्म पानी में उबाले हुए चौड़े मुँह वाली साफ एवं सुखे बोतलों में इस प्रकार भरना चाहिये कि हवा का बुलबुला न जा पाए। उसके बाद बोतलों को मोम से सील करके ढक्कन लगाकर बन्द कर देना चाहिये।

सामग्री पपीता का जैम

पपीता	– 1 किलो
चीनी	– 1 किलो
साइट्रिक एसिड	– 1 चम्मच (छोटा)

विधि :

- ❑ पपीता को धोकर, छीलकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लें।

- ❑ कटे टुकड़ों को पानी में किसी बर्तन में या कुकर में उबाल लें।
- ❑ जब गल जाए तो उन्हें नीचे उतार कर किसी मथनी या चम्मच से मसल-मसल कर मथ डालें।
- ❑ अब एक बड़े बर्तन में चीनी की चाशनी तैयार कर, उसमें पपीता का मथा गुदा मिला दें।
- ❑ इन्हें आग पर उस समय तक पकाएँ जब तक चीनी की चाशनी और पपीता मिलकर गाढ़े और एक न हो जायें।
- ❑ जब इस मिश्रण को चम्मच से नीचे गिराने पर चादर की तरह नीचे गिरे तो समझे जैम तैयार है।
- ❑ इसमें साइट्रिक एसिड डाल कर मिला दें और बोतल में सील कर रख दें।

मिली-जुली सब्जियों का अचार

सामग्री :

गाजर – 330 ग्राम, गोभी – 350 ग्रा०, शलजम–300 ग्रा०, नमक–250 ग्राम, लहसुन–25 ग्राम, अदरक–50 ग्राम, प्याज–50.60 ग्राम, लाल मिर्च–20 ग्रा० या स्वादानुसार, जीरा–10 ग्रा०, काली मिर्च – 10 ग्रा०, लॉंग–3 ग्रा०, दालचीनी – 3 ग्रा०, मोटी इलायची–10 ग्रा०, राई–150-200 ग्रा०, तेल–200 ग्रा०, सिरका–150 मिली०।

विधि :

- ❑ सब्जियों को अच्छी तरह धोकर 1½ से 2 ईंच के टुकड़ों में काट लें।
- ❑ एक बड़े बर्तन में पानी उबाले व इसमें 10-15 ग्राम नमक मिला दें। इस गर्म पानी में सब्जियों को डाल दें। दो मिनट के बाद सब्जियों को पानी से निकाल कर साफ कपड़े पर 2–3 घंटे के लिए छाया में हवादार स्थान पर फैला दें ताकि ऊपर का पानी सूख जाए।
- ❑ सभी मसालों को दरदरा पीस लें।
- ❑ प्याज व अदरक कद्दूकस करें व लहसुन को बारीक काट लें।
- ❑ कड़ाही में तेल गर्म करें। अच्छी तरह से गर्म हो जाने पर इसमें कद्दूकस किये हुए प्याज व लहसुन डाल कर भुनें। फिर कद्दूकस की हुई अदरक इसमें डाल दें।
- ❑ जब मसाला भुनने के बाद तेल छोड़ने लगे तो इसमें सभी मसाले व सब्जियाँ डालकर अच्छी तरह मिला लें व कड़ाही को आँच से नीचे उतार लें। इसमें नमक व राई भी डालकर मिलाएं।
- ❑ स्टील के बर्तन में सिरका व गुड़ मिलाकर चाशनी बनाएं। जब यह मिश्रण थोड़ा गाढ़ा हो जाए तो इसे अचार में डालकर मिला लें।
- ❑ अचार ठण्डा होने पर साफ व सुखे मर्तबान में डाल दें व ढक्कन लगा दें।

हरी मिर्च और आम के अचार

सामग्री :

आम – 100 ग्राम,	हरी मिर्च – 50 ग्राम
अदरक – 25 ग्राम,	नमक – 2 छोटे चम्मच
लाल मिर्च–1 छोटा चम्मच,	हल्दी–2 छोटे चम्मच
अजवाइन–1 छोटा चम्मच,	मंगरैल–1 छोटा चम्मच
सौंफ–1 छोटा चम्मच,	मेथी–1 छोटा चम्मच

विधि :

- ❑ आम को पतले लच्छे के रूप में कद्दूकस कर लें।

- ❑ हरी मिर्च को लम्बाई में हिस्सों में काट लें।
- ❑ अदरक को भी कद्दूकस कर लें।
- ❑ इन तीनों को नमक मिलाकर 4-5 घंटे तक धूप में रख दें।
- ❑ धूप से हटाने के बाद इसमें ऊपर वर्णित अचार के सभी मसाले और तेल डालकर एक सप्ताह तक फिर से धूप में रखें।
- ❑ इस प्रकार से अचार खाने लनायक तैयार हो जाएगा।

फल एवं सब्जियों का संरक्षण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखें :

1. फल व सब्जी स्वस्थ व अच्छी किस्म के हों। सड़े-गले या चोट खाए फल एवं सब्जी का प्रयोग न करें।
2. मसाले व तेल शुद्ध हों यानि मिलावट रहित हों।
3. सफाई का पुरा ध्यान रखें तथा लोहे का चाकु व बर्तन का इस्तेमाल न करें।
4. संरक्षित पदार्थों को हाथ व गीले चम्मच से न निकालें।
5. बर्तन या जार को बार-बार न खोलें। प्रयोग में आने वाला अचार कुछ मात्रा में निकाल कर बर्तन में रखें।
6. बोतलें हमेशा साफ, धुली व सूखी इस्तेमाल करें।
7. ढक्कन में छेद व जंग न हो व प्लास्टिक का सिंथेटिक फलेप हो।
8. प्लास्टिक या धातु के बर्तन या जार में न भरें, काँच की बोतल ही इस्तेमाल करना चाहिए।
9. शर्बत या स्क्वैश भरते समय बोतल में ऊपर से थोड़ा खाली जगह अवश्य छोड़ना चाहिए। इससे बोतल टूटेगी नहीं।
10. हमेशा एयर टाईट बोतलें ही इस्तेमाल करें।

इस प्रकार से संरक्षित पदार्थों के उपयोग से एक तरफ तो हमें पौष्टिक आहार के रूप में विटामिन तथा खनिज तत्व की प्राप्ति हो सकती है दूसरी ओर अगर व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाया जाये तो इसमें उद्यमिता विकास की भी असीम संभावनायें हैं। संरक्षित उत्पादों को तैयार कर बाजार में बेच कर अच्छी आमदनी अर्जित की जा सकती है क्योंकि बाजार में इसकी बहुत मांग है। आज प्राय: हर घर में महिलाएँ इन्हें खरीद कर रखती हैं।

अत: फल-सब्जी परिरक्षण को लोग रोजगार के रूप में अपना कर आमदनी का जरिया बना सकते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकते हैं।

❑

नौ नसी, एक कसी ।

नौ बार जोतने से कहीं ज्याद लाभ होगा, खेत जोत कर कम से कम एक बार मिट्टी फोड़ने से।

अध्याय 23

फलों एवं सब्जियों का वैज्ञानिक भण्डारण

डा० राजेश कुमार
प्राचार्य, कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया

फल एवं सब्जी की तुड़ाई का विशेष महत्त्व है जिसके कारण इनकी भण्डारण क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। कम ताप पर फल व सब्जी के अन्दर होने वाली क्रिया के बढ़ने के कारण उसके तत्वों का अन्य घटकों में परिवर्तन प्राय: देखा गया है कि फल व सब्जी विक्रेता थोड़े-थोड़े समय के बाद इन उत्पादों पर पानी का छिड़काव करते रहते हैं। इस छिड़काव से फल व सब्जी में विद्यमान पानी की मात्रा बनी रहती है तथा उत्पाद के अन्दर की क्रिया नहीं बढ़ेगी। फल एवं सब्जियों के अन्दर की उष्णता को दूरकरने के लिए पूर्वशीतन करना बहुत जरूरी है जो कि पानी के छिड़काव से किया जा सकता है। तोड़ने के बाद ऐसे उत्पाद को खुली धूप में न रखें तथा हो सके तो साफ पानी का छिड़काव करें ताकि नमी बनी रहे। एक बात और ध्यान देने वाली है कि फल व सब्जी को सही समय यानी पूर्ण रूप से पकने पर ही तोड़ें। कई बार देखने में आता है कि फल जब बिल्कुल खाने लायक हो जाता है, तब तोड़ा जाता है या फिर बिल्कुल ही कच्चा तोड़ लिया जाता है। सब्जियों में भी बेल वाली सब्जियाँ ऐसे समय पर तोड़ी जाती है जब इसमें विद्यमान तत्व नष्ट हो चुके होते हैं। इसलिए उत्पाद को सही समय पर ही तोड़ना चाहिए।

तुड़ाई की कला

तुड़ाई के दौरान भी कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अगर हो सके तो फलों को हाथ से एक-एक करके तोड़े तथा जमीन या किसी सख्त जगह पर न फेकें क्योंकि ऐसा करने से फलों के ऊपर उपस्थित प्राकृतिक लेप, जो कि एक पतली परत के रूप में होता है, नष्ट होजाएगा। इसके कारण उत्पाद से पानी ज्यादा मात्रा में निकलेगा तथा फल व सब्जी जल्दी सूखेंगे। जमीन पर पटकने से फल फट जाएंगे जिसके कारण इनके अन्दर ऑक्सीजन के प्रभाव से प्रक्रिया तेज होगी तथा कीटाणुओं के आक्रमण के लिए भी रास्ता खुल जाएगा। कई बार देखा गया है कि फल बाहर से देखने में अच्छे होते हैं। लेकिन एक-दो दिन रखें तो सड़ने लगते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि अन्दर के उत्तक टूटने के कारण उसकी क्रिया बढ़ जाती है व फल का रंग काला पड़ जाता है। जहां तक हो सके फलों के छिलकों को न छेड़ें तथा हल्के हाथों से इन्हें पकड़ें क्योंकि फल एवं सब्जियों की देखभाल एक नन्हे बच्चे की तरह करनी होती है। अनुसंधान में पाया गया है कि सुबह व शाम को तोड़े उत्पाद दिन के समय तोड़े गए फल एवं सब्जियों की अपेक्षा 2-3 दिन ज्यादा भण्डार किए जा सकते हैं तथा कई बार यह क्षमता और भी अधिक पाई गई है। तोड़ने के बाद फल एवं सब्जी को अगर साफ पानी में डालकर धो लिया जाए तो तोड़े गए पदार्थों के मिट्टी के कण, दवाई अवशेष तथा कीटाणु आदि काफी हद तक धुल जाते हैं व उत्पाद के अन्दर चलने वाली क्रिया से उत्पन्न उष्मा भी कम हो जाती है। इसके साथ-साथ उत्पाद की निधानी आयु बढ़ जाती है।

तुड़ाई के बाद फल एवं सब्जी का वर्गीकरण या श्रेणीकरण करके ही पेटियों में भरना चाहिए। ऐसा करने से एक जैसा उत्पाद पैक होगा तथा खराब होने की सम्भावना कम रहेगी व भंडारण क्षमता बढ़ जाएगी। इसके अलावा सबसे जरूरी होता है उत्पाद को निम्न ताप पर रखना। इसके अलावा परिवहन अगर रात को किया

जाए तो अच्छा रहेगा। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक पैक के ऊपर 3 या 4 डिब्बे ही रखे जाएँ। ऐसा करने से नीचे वाले पैक में रखा उत्पाद नहीं दबेगा, ऊष्मा नहीं बढ़ेगा तथा फल एवं सब्जियों की निधानी आयु अधिक होगी। पेटियों या टोकरियों में फल एवं सब्जियों को भरने के दौरान ध्यान रखें कि कीड़े, व्याधि या तुड़ई के समय खरोंच इत्यादि वाले फल अच्छे उत्पाद के साथ न रखे जाएँ। अगर लकड़ी के डिब्बे इस्तेमाल किए जा रहे हों तो डिब्बों की क्षमता के अनुसार ही उत्पाद भरा जाए तथा ऐसे डिब्बों को छायादार जगह पर रखें। परिवहन के दौरान डिब्बे में रखे फल एवं सब्जी आपस में न रगड़ें इसके लिए डिब्बे में घास-फूस, समाचार पत्र, पत्ते या पुआल इत्यादि रखे जा सकते हैं। अगर उत्पाद ज्यादा है तथा परिवहन की समस्या है तो किसान व बागवान भाई किसी छायादार जगह पर एक बड़ा-सा गड्ढा बनाकर, जो कि आयताकार या वर्गाकार हो, तथा जिसकी गहराई कम से कम एक मीटर तक हो, का इस्तेमाल भी कर सकते हैं। नीचे की सतह पर बालू की परत बिछाकर पानी का छिड़काव कर उत्पाद का भण्डारण किया जा सकता है। फल एवं सब्जी को सही तरीके से इस गड्ढे में रखकर ऊपर से नारियल की पत्तियों से बने ढक्कन से ढ़कने से भी उत्पाद की भण्डारण क्षमता बढ़ जाती है तथा खराब होने की सम्भावना कम होती है।

फल एवं सब्जियों को क्रमशः उत्पादक, आढ़ती, थोक या फुटकर व्यापारी तथा उपभोक्ता से गुजरना पड़ता है। उत्पाद जब मण्डी में पहुंच जाए तो थोक या फुटकर विक्रेता ध्यान रखें कि फल एवं सब्जी, जो कि डिब्बों या पेटियों में बन्द हैं, इस तरह खोलें कि नुकसान कम से कम हो। डिब्बों या पेटियों में से निकालने के बाद उत्पाद को छायादार जगह पर रखा जाए। परिवहन के दौरान उत्पाद में बनी उष्मा को कम करने के लिए साफ पानी का छिड़काव करें। कीड़ों या बीमारियों द्वारा प्रभावित फल एवं सब्जी को अच्छे उत्पाद से अलग रखें तथा दिन के समय पानी का छिड़काव करते रहें। कड़ी के अंत में आते हैं–उपभोक्ता। फल व सब्जी का काफी दाम चुकाने के बाद उपभोक्ता इन्हें इस्तेमाल के लिए घर लेकर आते हैं। इसलिए उपभोक्ताओं को भी इनका ध्यान रखना उतना ही जरूरी है। बाजार से फल या सब्जी खरीदकर घर लाने के बाद इन्हें साफ पानी में 3-4 बार धोकर, साफ कपड़े से सुखाकर घर लाने के बाद इन्हें साफ पानी में 3-4 बार धोकर, साफ कपड़े से सुखाकर भण्डारण कर सकते हैं। बिना पोलीथीन से भण्डारण करने पर उत्पादन में उपस्थित पानी रेफ्रिजरेटर सोख लेगा तथा फल एवं सब्जी जल्दी सूख जाएगी। कई फल जैसे केला, नींबू, संतरा, आम इत्यादि को 10° से० से नीचे भण्डारण नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से ठण्ड के कारण इनके अंदर काले धब्बे बन जाएंगे तथा भण्डारण किया गया उत्पादन खाने योग्य नहीं रहेगा। फल एवं सब्जियों का रसोई घर में भण्डारण न करें क्योंकि स्टोव में जलने वाले मिट्टी के तेल व रसोई गैस से निकलने वाले धुएँ से उत्पादन बहुत जल्दी खराब हो जाता है। घर के किसी दूसरे कमरे में, जहाँ धूप सीधी न पड़ती हो, इनके भण्डारण के लिए अच्छी जगह रहती है। बीच-बीच में भण्डारण किए गए उत्पादन को परखते रहना चाहिए तथा सड़े-गले फल एवं सब्जी को अलग कर लेना चाहिए।

फल एवं सब्जियों की भण्डारण क्षमता बढ़ाने के लिए कई रसायन भी हैं जिनका इस्तेमाल किया जा सकता है। ये रसायन हैं जिब्रेलिक अम्ल, सिल्वर नाइट्रेट, मैलिक हइड्राजाइड इत्यादि। इन रसायनों को अलग-अलग या एक दूसरे के साथ विभिन्न अनुपातों में मिलाकर फल व सब्जियों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। फल एवं सब्जियाँ हमारे दैनिक आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है इसलिए इनका सही रखरखाव किसी एक की जिम्मेदारी नहीं अपितु सभी से इस बारे में अपेक्षा है। तुड़ाई से उपयोग तक फल एवं सब्जियों की देखभाल संबंधी कुछ मुख्य बातें संक्षेप में इस प्रकार है :

1. फल एवं सब्जियों को पूर्ण रूप से परिपक्व होने पर ही तोड़े।
2. तुड़ाई सुबह या शाम के समय ही करें।
3. तोड़ते समय उत्पाद को सख्त जगह पर न गिरने दें।
4. उत्पाद को खुली धूप में न रखें बल्कि छायादार जगह पर एकत्र करें।

5. फल एवं सब्जियों के अंदर की ऊष्मा को कम करने के लिए तुड़ाई के बाद साफ पानी का छिड़काव करें।
6. डिब्बाबंदी से पूर्व उत्पाद का श्रेणीकरण करें।
7. श्रेणीकरण के अनुसार ही डिब्बों या पेटियों में फल एवं सब्जियों को भरें।
8. डिब्बों या पेटियों में फल एवं सब्जियाँ आपस में न रगड़ें, इसलिए घास-फूस जैसे पुआल व पत्ते इत्यादि रखें।
9. उत्पाद मण्डी में सुबह या शाम के समय ही भेजें।
10. परिवहन के दौरान उत्पाद को धूप व वर्षा से बचाएं।
11. वाहन में तीन-चार से ज्यादा डिब्बे एक दूसरे से ऊपर न रखें।
12. डिब्बों या पेटियों के ऊपर कोई भारी सामान न रखें व किसी को इस पर न बैठने दें।
13. वाहन में उत्पाद रखने व उतारने के समय सावधानी बरतें।
14. डिब्बों व पेटियों को ध्यानपूर्वक खोले तथा उत्पाद को धूप से बचाएँ।
15. फूटकर विक्रेता थोड़े-थोड़े अंतराल पर उत्पाद पर साफ पानी का छिड़काव करें।
16. उपभोक्ता फल एवं सब्जियों को घर लाकर साफ पानी से तीन-चार बार धोएँ।
17. अच्छी गुणवत्ता वाली पोलीथीन में उत्पाद को लपेटकर रेफ्रिजरेटर में भण्डारण करें।
18. अगर उत्पाद ज्यादा है तथा बाजार में इसका उचित दाम नहीं मिल रहा है तो रसायनों की मदद से फल एवं सब्जियों की निधानी आयु बढ़ाई जा सकती है।

❑

सब्जी बीज उत्पादन हेतु बीज दर, दो किस्मों के बीज अलगाव की दूरी एवं प्रति हेक्टर बीज की प्राप्ति

सब्जी	बुआई हेतु बीज दर (कि0ग्रा0/हे0)	दो किस्मों के बीच अलगाव की दूरी (मी0)	1000 बीज के दानों का वजन (ग्राम में)	बीज की उपज (कि0ग्रा0/ हेक्टर)
चुकन्दर	8-10	1000	10-17	800-1000
पालक	15-20	1000	10-12	1000-2000
फूलगोभी	0.4-0.6	1000	2.7-3.4	600-800
मूली	6-8	1000	10-11	800-1000
बोदी	20-25	50-100	200	1000-1500
तरबूज	2-3	1000	110-115	400-700
खीरा	2-2.5	1000	25-30	300-500
कोंहड़ा	2-4	1000	190-210	500-700
मटर	40-50	50-100	150-330	2000-2500
फ्रेंचबीन (झाड़ीदार)	50	50-100	250-500	1500-2000
फ्रेंचबीन (पोलटाइम)	40	50-100	800-1200	1500-2000
सेम	20-25	50-100	800-1200	1500-2000
टमाटर	0.4-0.5	50-100	2.5-3	200-300
बैंगन	0.4-0.5	50-100	4-5	200-300
मिर्च	1.0-1.5	50-100	3.5	100-200
शिमला मिर्च	0.8-1.0	50-100	5.0	90-150
गाजर	4-5	1000	0.8	300-400
प्याज	6-8	1000	3.6	800-1200
लाल साग	1.0	500	0.3	80-100
भिण्डी	10-15	500	50	900-1200

बागवानी विकास की योजनायें

(क) राष्ट्रीय बागवानी मिशन तथा मुख्यमंत्री बागवानी मिशन

1. बागान सामग्री का उत्पादन

क्रम	मद	अधिकतम अनुमानित लागत	सहायता का पैटर्न
(1)	आदर्श/बड़ी नर्सरी (2 से 4 हेक्टेयर)	6.25 लाख रुपए प्रति हेक्टेयर युनिट	सार्वजनिक क्षेत्र को 100% यूनिट जो कि 25.00 लाख रुपए प्रति यूनिट तक सीमित होगी और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लगत का 50 प्रतिशत जो कि अधिकतम 4 हेक्टेयर वाली किसी इकाई हेतु 12.50 लाख रुपए प्रति यूनिट की अधिकतम सीमा के अधीन होगी तथा यह एक परियोजना आधारित क्रियाकलाप के आधार पर होगा। प्रत्येक नर्सरी प्रत्येक वर्ष वनस्पति प्रसार के माध्यम से अधिदेशित बारहमासी फल के पौधे/वृक्ष प्रजाति/बागान फसल के प्रति वर्ष प्रति हेकटेयर पर न्यूनतम 50 हजार पौधों का उत्पादन करेगी।
(2)	छोटी नर्सरी (1 हेक्टेयर)	6.25 लाख रुपए	सार्वजनिक क्षेत्र को 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत जोकि 3.125 लाख रुपए प्रति यूनिट की अधिकतम सीमा के अधीन होगी तथा यह एक परियोजना आधारित क्रियाकलाप के आधार पर होगा। प्रत्येक नर्सरी प्रत्येक वर्ष वनस्पति प्रसार के माध्यम से अधिदेशित बारहमासी फल के पौधे/ वृक्षप्रजाति / बागान फसल के प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर पर न्यूनतम 50 हजार पौधों का उत्पादन करेगी।
(3)	विद्यमान टिशु कल्चर (टी.सी) यूनिटों का पुनर्वास	15 लाख रुपए प्रति यूनिट परियोजना आधारित क्रियाकलाप के रूप में	सार्वजनिक क्षेत्र के लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत।
(4)	नई टीसी यूनिटों की स्थापना	100 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र को लागत का का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयाजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत। प्रत्येक टीसी यूनिट अधिदेशित फसल की न्यूनतम 15 लाख पौधों का उत्पादन करेगी। जिनके लिए वाणिज्यिक उपयोग हेतु प्रोटोकॉल उपलब्ध हों।

(5)	सब्जियों हेतु बीज उत्पादन तथा वितरण	50,000 रुपए प्रति हेक्टेयर	सार्वजनिक क्षेत्र को लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत जोकि प्रति लाभग्राही 5 हेक्टेयर एक सीमित होगा। आधार बीज के उत्पादन हेतु ब्रीडर बीज की मांग करने वाले संगठन आईसीएआर/एसएयू से ब्रीडर बीज की अधिप्राप्ति की लागत पर 25% की सहायता हेतु पात्र होंगे।
(6)	बीज आधारभूत ढांचा (बागवानी फसलों की हैण्डिलिंग प्रसंस्करण, पैकिंग, भंडारण आदि हेतु)	200 लाख रु. प्रति	सार्वजनिक क्षेत्र के लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत।
2. नए बगीचों की स्थापना (क्षेत्र विस्तार)			
1. फल			
(क) लागत प्रधान फसलें (प्रति लाभग्राही 4 हेक्टेयर के अधिकतम क्षेत्र हेतु)			
(1)	बारहमासी फल-अंगुर, स्ट्राबेरी, किवी, फल आदि।	1,00,000 रुपए प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 50,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री तथा आईएनएम/आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50% दूसरे वर्ष में 75% तथा तीसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर के अधीन 60:20:20 की 3 किश्तों में पृथक फसल की निर्देशनात्मक लागत अनुबंध-4 में दी गई है।
(2)	गैर-बारहमासी फल-केला (सकर) तथा अनानस	70,000 रुपए प्रति हेकटेयर	अधिकतम 35,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री तथा आईएनएम/ आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50% दूसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर के अधीन 75 : 25 की 2 किश्तों में)। पृथक फसल की निर्देशनात्मक लागत अनुबंध-4 में दी गई है।
(3)	केला (टीसी) तथा अनानास	1,00,000 रु० प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 50,000/- रुपए प्रति हेकटेयर (बागान सामग्री तथा आईएनएम/आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50% दूसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर से अधीन 75:25 की 2 किश्तों में)। पृथक फसल की निर्देशनात्मक लागत अनुबंध-4 में दी गई है। पृथक पुसल की निर्देशनात्मक लागत अनुबंध-4 में दी गई है।
(ख)	उच्च घनत्व वाले पौधे आम, अमरूद, लीची, बेर आदि।	80,000 रुपए प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 40,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री तथा आई एनएम/ आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50% दूसरे वर्ष में 75% तथा तीसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर से अधीन 60:20:20 की 3 किश्तों में) पृथक फसल की निर्देशनात्मक लागत अनुबंध-4 में दी गई है।

	(ग) सामान्य अंतर का उपयोग करते हुए लागत प्रधान फसलों के अतिरिक्त अन्य फल फसलें	40,000 रुपये प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 30,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री तथा आई एनएम/आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 75% बारहमासी फसलों हेतु दूसरे वर्ष में 75% तथा तीसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर के अधीन 60:20:20 की 3 किश्तों में और गैर-बाहमासी फसलों हेतु दुसरे वर्ष में 90% के जीवित रहने की दर के अधीन 2 किश्तों में 75:25)। पृथक फसल की लागत अनुबंध-4 दी गई है।
6.	**बागान फसलें (प्रति लाभग्राही अधिकतम 4 हेक्टेयर क्षेत्रफल हेतु)**		
	काजू तथा कोको, पुन: पौधे लागाए जाने सहित	40,000/- रुपऐ प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 20,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री तथा आईएनएम/आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर किए गए व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50% दूसरे वर्ष में 75% तथा तीसरे वर्ष में 90% की जीवित रहने की दर के अधीन 60:20:20 की 3 किश्तों में जोकि प्रति लाभग्राही 4 हेक्टेयर के अधिकतम क्षेत्रफल हेतु है।
3.	जीर्ण बागानों का पुनरूद्वार/प्रतिस्थापन	30,000/- रु० हेक्टेयर (औसत)	कुल लागत का 50 प्रतिशत जो कि प्रति लाभग्राही 2 हेक्टेयर तक हेतु अधिकतम 15,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर के अधीन है। दावा की जाने वाली वास्तविक लागत पुनरूद्धार की जाने वाली फसल की प्रकृति तथा आवश्यकता पर आधारित होती है।
4.	जल स्त्रोतों का सृजन		इस नरेगा के साथ क्रियान्वित किया जाएगा
(क)	प्लास्टिक/आरसीसी लाइनिंग के साथ खेत के तालाबों/ खेत के पानी भंडारों पर सामुदायिक टैंक	मैदानी क्षेत्रों में 15 लाख रुपए प्रति युनिट, पहाड़ी क्षेत्रों में 17.25 लाख रुपए प्रति युनिट	100 मीटर × 100 मीटर × 3 मीटर के तालाब आकार अथवा किसी छोटे आकार के साथ 10 हेक्टेयर के कमांड क्षेत्रफल हेतु प्रो-राटा आधार पर लागत का 100% जोकि कमांड क्षेत्र, स्वामित्व तथा प्रबंधन समुदाय/किसान समूह द्वारा किए जाने पर निर्भर करेगा। काली कपास मिट्टी वाले क्षेत्रों में गैर लाइन वाले तालाबों/ टंकियों में लागत 33% कम होगी। एनएचएम के अंतर्गत सहायता प्लास्टिक/आरसीसी लाइनिंग की लागत तक सीमित है। तथापि, गैर, मनरेगा लाभग्राहियों हेतु एनएचएम के अंतर्गत लाइनिंग की लागत सहित तालाब/टैंक के निर्माण की समूची लागत पर सहायता प्राप्त की जा सकती है।
(ख)	व्यक्तियों हेतु जल संचयन प्रणाली 20 मीटर × 3 मीटर तालाब/खोदे गए कुंए 100/-रुपए घनमीटर की दर से।	मैदानी क्षेत्रों में 1.20 लाख रुपए प्रति यूनिट, पहाड़ी क्षेत्रों में 1.38 लाख रुपए प्रति यूनिट जो अधिकतम 2 हेक्टेयर कमांड क्षेत्र हेतु है।	लाइनिंग सहित लागत का 50%। छोटे आकार के तालाब/ तालाब/खोदे कुँए में लागत प्रो-राटा आधार पर देय होगी। यह भी नरेगा के साथ होगी। अनुरक्षण लाभग्राही द्वारा सुनिश्चित किया जायगा।

5. संरक्षित कृषि		
1. ग्रीन हाउस ढांचा (क) पंखा तथा पैड प्रणाली	1465/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्ग मीटर तक सीमित लागत का 50%
(ख) प्राकृतिक वातायन प्रणाली		
(1) टयूब्यूलर ढांचा	935/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्ग मीटर तक सीमित लागत का 50%
(2) लकड़ी का ढांचा	515/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्गमीटर तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 500 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
(3) बांस का ढांचा	375/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
2. प्लास्टिक मलचिंग	20,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	प्रति लाभग्राही 2 हेक्टेयर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
3. छायादार जाली गृह		
(1) ट्यूब्यूलर ढांचा	600/- रुपए प्रति वर्ग मीटर प्रति	लाभग्राही 1000 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
(2) लकड़ी का ढांचा	410/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
(3) बांस का ढांचा	300/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
4. प्लास्टिक टनल	30/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्ग वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
5. पक्षी-रोधी/वृष्टि-रोधी जाली	20/- रुपए प्रति	प्रति लाभग्राही 5000 वर्गमी. तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
6. पॉली हाउस में उगाई गई उच्च मूल्य सब्जियों की बागान सामग्री की लागत	105/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 500 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का
7. पॉली हाउस में उगाए गए फूलों की बागान सामग्री की लागत	500/- प्रति रुपए प्रति वर्ग	लाभग्राही 500 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
6. सटीकता कृषि विकास केन्द्रों (पीएफडीसी) के माध्यम से सटीकता कृषि विकास तथा विस्तार	परियोजना आधारित	पीएफडीसी को लागत का 100%

7.	**एकीकृत पोषण प्रबंधन (आईएनएम)/एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) का संवर्धन**		
(1)	सेनेट्री तथा फाइटो आधारभूत ढांचा (सार्वजनिक क्षेत्र)	500 लाख रु० प्रति यूनिट	लागत का 100%
(2)	आईपीएम/ आईएनएम का संवर्धन	2000/- रुपए प्रति हेक्टेयर	प्रति लाभग्राही 4 हेकटेयर की सीमा तक अधिकतम 1000/- रुपए प्रति हेक्टेयर के अधीन लागत का 50%
(3)	रोग पूर्वानुमान यूनिट (सार्वजनिक क्षेत्र)	4 लाख रुपए रुपए प्रति यूनिट	अधिकतम 4 लाख रुपए प्रति यूनिट
(4)	जैव-नियंत्रण प्रयोगशाला	80 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 80 लाख रुपए प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र को परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 40.00 लाख रुपए।
(5)	पौधा स्वास्थ्य क्लीनिक	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 20 लाख रुपए प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र को परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 10.00 लाख रुपए।
(6)	पत्ती/टिशु विश्लेषया प्रयोगशाला	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 20 लाख प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र का परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 10.00 लाख रुपए।
8.	**जैविक कृषि**		
(1)	जैविक कृषि को अपनाना	20,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	लागत का 50% जो कि प्रति प्रति लाभग्राही 4 हेक्टेयर के अधिकतम क्षेत्र हेतु 1000/- रुपए प्रति हेक्टेयर तक सीमित है जो तीन वर्षों की अवधि का फैला हुआ है। जिसमें पहले वर्ष 4,000/- रुपए और दूसरे तथा तीसरे वर्ष प्रत्येक में 3,000/- रुपये की सहायता अंतरगत है। कार्यक्रम को प्रमाणीकरण के साथ संयोजित किया जाना है।
(2)	आर्गेनिक प्रमाणीकरण	परियोजना आधारित	50 हेक्टेयर के एक क्लस्टर हेतु 5 लाख रुपए जिसमें पहले वर्ष में 1.50 लाख रुपए दूसरे वर्ष में 1.50 लाख रुपए और तीसरे वर्ष में 2.00 लाख रुपए शामिल है।
(3)	वर्मी खाद यूनिट/ आर्गेनिक आदान उत्पादन यूनिट	स्थायी ढांचे हेतु 60,000/- रु० प्रति यूनिट और एचडीपीई वर्मीबेड हेतु 10,000/- रु०	स्थायी ढांचे के 30"×8"×2-5" आयाम की इकाई के आधार के अनुरूप लागत का 50% जिसे प्रो-राटा आधार पर प्रशासित किया जाना है। एचडीपीई वर्मीबेड हेतु 96 सीएफटी (12'×4'×2') के आकार की पुष्टि वाली लागत का 50% जिसे प्रो-राटा आधार पर प्रशासित किया जाना है।
9.	अच्छे कृषि व्यवहारों (जीएपी) हेतु प्रमाणीकरण, आधारभूत ढांचे	10,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	लागत का 50%

11.	**बागवानी मशीनीकरण**		
(क)	विद्युत चालित मशीन/ उपकरण जिसमें विद्युत आरी तथा संयंत्र बचाव उपकरण आदि शामिल है।	35,000/- रुपए प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(ख)	रोटावेयर / उपकरण के साथ विद्युत मशीनें (20 बीएचपी तक)	1.20 लाख रुपय प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(ग)	विद्युत मशीनें (20 एचपी तथा उससे अधिक) एस्सेसरीज/ उपकरण सहित	3/- लाख रुपए प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(घ)	प्रदर्शन प्रयोजन हेतु बागवानी के लिए नई मशीनों तथा उपकरणों का आयात (सार्वजनिक क्षेत्र)	50/- लाख रुपए प्रति मशीन	कुल लागत का 100%
12.	प्रदर्शन/फ्रंट लाइन प्रदर्शन (एफएलडी) के माध्यम से टेकनोलोजी प्रसार	25/- लाख रुपए	किसानों के खेतों में लागत का 75% और सार्वजनिक क्षेत्र आदि के स्वामित्व वाले फार्मों में लागत का 100%
13.	**मानव संसाधन विकास (एचआरडी)**		
(क)	पर्यवेक्षकों तथा उद्यमियों हेतू एचआरडी	20/- लाख रुपए प्रति प्रशिक्षण	पहले वर्ष में लागत का 100% बाद के वर्षों में आधारभूत ढांचे की लागत का दावा नहीं किया जाएगा।
(ख)	मालियों हेतु एचआरडी	15/ लाख रुपए प्रति प्रशिक्षण	पहले वर्ष में लागत का 100% बाद के वर्षों में आधारभूत ढांचे की लागत का दावा नहीं किया जाएगा।
(ग) (1)	किसानों का प्रशिक्षण जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 400/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(2)	जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 750/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%

(3)	राज्य के बाहर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 1000/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(घ) किसानों का परिभ्रमण दौरा			
	(1) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 250/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
	(2) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 300/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
	(3) राज्य के बाहर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 600/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
	(4) भारत से बाहर	प्रति प्रतिभागी 3 लाख रुपए	परियोजना आधारित। वायु/रेल यात्रा लागत का 100%
(ङ) तकनीकी स्टाफ/फील्ड कार्यकारियों का प्रशिक्षण/अध्ययन दौरा			
	(1) राज्य के भीतर	प्रति प्रतिभागी 200/- रुपए प्रति दिन जमा देय होने के अनुसार यात्रा व्यय/ दैनिक व्यय	लागत का 100%
	(2) प्रगामी राज्यों/ इकाईयों अध्ययन दोरा (न्यूनतम 5 प्रतिभागियों समूह)	प्रति प्रतिभागी 650/- रुपये प्रति दिन जमा देय होने के अनुसार यात्रा व्यय/दैनिक व्यय	लागत का 100%
	(3) भारत से बाहर	प्रति प्रतिभागी 5 लाख रुपए	वास्तविक आधार पर लागत का 100%

ग. एकीकृत कटाई पश्चात प्रबंधन		
(1) पैक हाउस/फार्म पर एकत्रीकरण तथा भण्डारण युनिट	9 मीटर × 6 मीटर आकार वाली / यूनिट हेतू 3 लाख रु०	पूंजीगत लागत का लागत का 50%
(2) प्री-कूलिंग यूनिट	6 एमटी क्षमता हेतु 15 लाख रुपए	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
(3) मोबाइल प्री-कूलिंग यूनिट	5 एमटी क्षमता हेतु प्रति यूनिट 24 लाख रुपए	- वही -
(4) कोल्ड स्टोरेज यूनिट (निर्माण) / विस्तार/ आधुनिकीकरण	5000 एमटी क्षमता हेतु प्रति एमटी 6,000 रुपये	सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता केवल उन्हीं यूनिटों के संबंध में जो नई तकनीकों को अपनाती हैं, जो कि इन्सूलेशन, आर्द्रता नियंत्रण तथा मल्टी चैम्बर के साथ फिन काइल कूलिंग प्रणाली के प्रावधान सहित उर्जा दक्ष हैं। विभाग द्वारा जारी तकनीकी मानक, पैरामीटर तथा प्रोटोकॉल अपनाए जाऐं।
(5) सीए/एमए भण्डारण यूनिट	5000 एमटी क्षमता हेतू प्रति एमटी 32,000 रुपए	- वही -
(6) रेफर वैन / कंटेनर	6 एमटी क्षमता हेतू प्रति एमटी 24 लाख रुपए	- वही -
(7) प्राथमिक/ मोबाईल/न्यूनतम प्रसंस्करण यूनिट	24 लाख रुपए प्रति यूनिट	- वही -
(8) पकाने वाला चैम्बर	5000 एमटी क्षमता हेतु प्रति एमटी 6,000 रुपए	- वही -
(9) ईवैपोरेटिव/ कम उर्जा वाला शीत चैम्बर (8 एमटी)	4 लाख रुपए प्रति यूनिट नई यूनिट हेतु 2	कुल लागत का 50 प्रतिशत कुल लागत का 50 प्रतिशत

(10)बचाव यूनिट (निम्न लागत)	लाख रुपए प्रति यूनिट और उन्नयन हेतु 1 लाख रुपए प्रति यूनिट	
(11) निम्न लागत प्याज भण्डारण ढांचा (25 एमटी)	1 लाख रुपए प्रति यूनिट	कुल लागत का 50 प्रतिशत प्रतिशत
(12) पूसा शून्य ऊर्जा ठण्डा (100 किग्रा.)	4000 रुपए प्रति यूनिट	कुल लागत का 50 प्रतिशत
घ. बागवानी उत्पादन हेतु विपणन आधारभूत ढांचे की स्थापना		
1. टर्मिनल बाजार	प्रति परियोजना 150 करोड़ रुपए	पृथक रूप से जारी प्रचालनात्मक दिशा-निर्देशों के अनुसार प्रतिस्पर्ची बिडिंग के माध्यम से सार्वजनिक-निजी भागीदारी के रूप में 25% से 40% (50.00 करोड़ रुपए तक सीमित)।
2. थोक बाजार	प्रति परियोजना 150 करोड़ रु०	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की पूंजीगत लागत के 25 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 35.33 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
3. ग्रामीण बाजार/ अपनी मंडियां प्रत्यक्ष बाजार	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की पूंजीगत लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
4. खुदरा बाजार/ आउटलेट (पर्यावरणीय निर्यंत्रित)	10 लाख रुपये प्रति यूनिट	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की पूंजीगत लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
5. स्थित/मोबाइल वेंडिंग कार्ट/शीत चैम्बर के साथ प्लेटफार्म	30,000 रुपए प्रति यूनिट	कुल लागत का 50 प्रतिशत
6. एकत्रीकरण छंटाई/ग्रेडिंग, पैकिंग यूनिटों आदि हेतु कार्यात्मक आधारभूत ढांचा	15 लाख रुपए प्रति यूनिट	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की पूंजीगत लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
7. गुणवत्ता नियंत्रण /विश्लेषण प्रयोगशाला	200 लाख रु० प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र को कुल लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र को क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के द्वारा 50 प्रतिशत

	8. बाजार विस्तार, गुणवत्ता जागरूकता और नए उत्पादों हेतु बाजार नेतृत्व वाले विस्तार क्रियाकलाप	प्रति कार्यक्रम लाख रुपए	राज्य सरकार/एसएचएम/सार्वजनिक क्षेत्र की एजेंसियों को 100 प्रतिशत सहायता।
ङ.	विशेष हस्तक्षेप एसएचएम की आकस्मिक /अप्रत्याति अवश्यकताओं से निपटना	10 लाख रुपए प्रति परियोजना	परियोजना प्रस्ताव पर आधारित लागत का 50%।
च.	मिशन प्रबंधन 1. राज्य स्तर 1. राज्य तथा जिला मिशन कार्यालय और क्रियान्वयन एजेंसियों प्रशासनिक व्ययों फील्ड परामर्शों, परियोजना तैयारी, कम्प्यूटरीकरण आकस्मिकता आदि हेतु	राज्य बागवानी मिशन (एसएचएम)/ क्रियान्वयन एजेंसियों को अवगत आवश्यकता के आधार पर कुल वार्षिक व्यय का 5%	100% सहायता
	2 संस्थागत सुदृढ़ीकरण-वाहनों को किराए पर लिया जाना, हार्डवेयर/साफ्टवेयर आदि की खरीद	परियोजना आधारित	100% सहायता
	3. संगोष्टियां, सम्मेलन, कार्यशालाएँ, प्रदर्शनियां, किसान मेला, बागवानी शो, शहद महोत्सव आदि		
	क) राज्य स्तर	3 लाख रुपए प्रति कार्यक्रम	100% सहायता जोकि दो दिवस के कार्यक्रम हेतु अधिकतम 3.00 लाख रुपए प्रति कार्यक्रम के अधीन होगी
	(ख) जिला स्तर	2 लाख रुपए प्रति कार्यक्रम	100% सहायता जोकि दो दिवस के कार्यक्रम हेतु अधिकतम 2.00 लाख रुपए प्रति कार्यक्रम के अधीन होगी।
	4. राज्य स्तर पर तकनीक सहायता समूह (टीएसजी) विशेषज्ञों/स्टाफ को लेने, अध्ययन, प्रबोधन तथा मूल्यांकन, मास मीडिया, प्रचार वीडियो कान्फ्रेन्सिंग आदि।	5 करोड़ रुपए प्रति वर्ष	लागत का 100 प्रतिशत

2. राष्ट्रीय स्तर 1 राष्ट्रीय स्तर पर तकनीकी सहातया समूह टीएसजी) विशेषज्ञों/ परामर्शदाताओं के लेने अध्ययन संगोष्ठियाँ/ सम्मेलन/का लाएँ, प्रशिक्षण, आकस्मिकताएँ प्रबोधन तथा मूल्यांकन, मास मीडिया, प्रचार वीडियो कान्फ्रेन्सिंग आदि	5 करोड़ रु०/वर्ष	लागत का 100 प्रतिशत
2. एफएओ, विश्व बैंक एडीबी जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के साथ तकनीकी सहयोग द्विपक्षीय सहयोग, अंतर्राष्ट्रीय परिभ्रमण दौरे/ पदाधिकारियों का प्रशिक्षण आदि	परियोजना आधारित वास्तविक लागत आधार पर	लागत का 100 प्रतिशत

◆ टिप्पणी–परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के निर्मुक्त किए जाने हेतु सार्वजनिक क्षेत्र की यूनिटों, पंचायतों, सहकारिताओं, पंजीकृत सोसाइटियों/ट्रस्ट तथा पब्लिक लिमिटेड कंपनियों के क्रेडिट का संयोजित होना आवयश्यक नहीं है, बशर्ते वे अपने स्वयं के संसाधनों से परियोजना लागत के शेष अंश को पूरा कर सकें।

जैविक खेती प्रोत्साहन कार्यक्रम :

- ❑ वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन के लिए आवेदन प्राप्त किये जायेंगे। प्राप्त आवेदनों की जाँच 15 दिनों के अंदर स्वीकृति दी जायेगी।
- ❑ किसानों को पक्का निर्माण इकाई के लिए अनुदान (750 घनफीट इकाई के लिए लागत का 50 प्रतिशत अधिकतम रु० 30,000/–) दिया जायेगा।
- ❑ एच.डी.पी.ई. वर्मी बेड के 10 इकाई के लिए अनुदान (960 घनफीट इकाई के लिए लागत का 50 प्रतिशत अधिकतम रु० 50,000/–) दिया जायेगा।
- ❑ व्यवसायिक स्तर पर उत्पादन के लिए न्यूनतम 3000 मैट्रिक टन प्रतिवर्ष उत्पादन करने वाले इकाई को परियोजना प्रस्ताव भी प्राप्त किये जायेंगे।
- ❑ दलहनी फसलों के बीच उपचार के लिए राइजोवियम कल्चर का पैकेअ एक चौथाई एकड़ के लिए किसानों को नि:शुल्क उपलब्ध करायी जाएगी।
- ❑ मुख्यमंत्री तीव्र बीज विस्तार योजना एवं बीज ग्राम योजना अंतर्गत धान फसल के बीज उत्पादन में शामिल किसानों को नील हरित शैवाल आधा एकड़ क्षेत्र के लिए नि:शुल्क उपलब्ध करायी जाएगी।

चुनिंदा फल फसलों के प्रति हैक्टेयर के क्षेत्र विस्तार की निर्देशानात्मक लागत

फसल	पौधे में अंतर (मीटर)	प्रति हेकटेयर पौधों की संख्या	बागान सामग्री की लागत	आदानों की लागत	कुल
सेब	06×06	278	5560	30,000	35,560
आंवला	06×06	278	8340	15,000	23,340
आंवला	03×03	1110	33300	25,000	58,300
केला (सकर)	02×02	2500	20000	25,000	45,000
केला (टीसी)	1.8×1.8	3086	43204	40,000	83,204
बेर	06×06	278	6950	12,000	18,950
नींबू प्रजाति					
क) मंदारिन	06×06	278	8340	27,000	35,340
ख) मीठा संतरा	06×06	278	8340	25,000	33,340
अंगूर	04×04	625	6250	85,000	91,250
अमरूद	06×06	278	6950	15,000	21,950
लीची	1010	100	3500	20,000	23,500
लीची	75×75	178	6230	23,000	29,230
आम	10×10	100	4000	18,000	22,000
आम	2.5×2.5	1600	64000	40,000	104,000
अनानास (सक)	0.6×0.3	45000	45000	20,000	65,000
अनानास (टीसी)	0.6×0.3	45000	135000	30,000	165,000
अनार	05×05	400	12000	30,000	42,000
अनार	05×03	667	20010	35,000	55,010
सपोता	05×05	400	12000	25,000	37,000
स्ट्राबेरी	0.5×1	20000	60000	90,000	150,000

❑

विशेष उद्यानिकी फसल योजना

इस योजना का कार्यान्वयन परियोजना निदेशक, आत्मा द्वारा किया जायेगा। प्रत्येक जिला के लिए एक फसल चिन्हित किया गया है। जिसके विकास के लिए विभिन्न मदों से परियोजना निदेशक, आत्मा द्वारा राशि प्राप्त की जायेगी।

स्वीकृत्यादेश में पपीता, पान, केला (टिश्यू कल्चर), आँवला, बेल, बेर, कटहल, शरीफा, जामुन, सहजन, नारियल का क्षेत्र विस्तार, कटे फूल, कन्द वाले फूल, खुले फूल, मसाले, सगन्धीय पौधे, औषधीय पौधे, जीर्णोद्धार, चलन्त/स्थिर प्रशीतन सुविधा के साथ ठेला, प्रसंस्करण सुविधा के लिए राष्ट्रीय बागवानी मिशन से देय अनुदान राशि के अतिरिक्त राज्य योजना से अनुदान राशि की व्यवस्था की गयी है। अधिकतम 90% अनुदान की राशि ही देय होगा।

जिलों के लिए चिन्हित उद्यानिकी फसल एवं विकसित किये जाने वाले अवयव निम्नानुसार हैं :–

क्रम	जिला का नाम	चिन्हित फसल	अवयव	कुल अनुदान
1	पूर्वी चम्पारण	लहसून	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
2	प0 चम्पारण	हल्दी एवं मेंथा	क्षेत्र विस्तार (हल्दी)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (मेंथा)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
3	मुजफ्फरपुर	लीची	जीर्णेद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत ठेला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			मसाला की अंतर्वर्ती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
4	वैशाली	केला (टिश्यू कल्चर)	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 74883/– रुपये
5	समस्तीपुर	हल्दी	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
6	दरभंगा	आम एवं मसाला की अंतर्वर्त्तीय खेती	जीर्णेद्धरी	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			मसाला की अंतर्वती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
7	पूर्णियाँ	आलू उत्पादन एवं मूल्य संवर्द्धन	आलू बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत केला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
8	अररिया	मूंगफली		
9	किशनगंज	अनानास	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 58500/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये

10	कटिहार	बाँस	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 14400/– रुपये
11	भागलपुर	आम (जरदालू) एवं	जीर्णोद्धार (आम बाग)	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		बागों का जीर्णोद्धार	प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (जरदालू आम)	90 प्रतिशत अधिकतम 19800/– रुपये
12	बांका	कटहल	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
13	मुंगेर	सगंधीय पौधे एवं सहजन	क्षेत्र विस्तार (सगंध पौधे	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
14	पटना	फूल एवं पपीता	क्षेत्र विस्तार (खुले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कटे फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कन्द वाले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 81000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (पपीता)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
15	नालंदा	जैविक सब्जी उत्पादन,	जैविक सब्जी उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 10000/– रुपये
		पान एवं मशरूम	क्षेत्र विस्तार (पान)	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये /200 वर्गमी.
			मशरूम	90 प्रतिशत तक राष्ट्रीय बागवानी मिशन के अनुसार
16	गया	आँवला	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत ठेला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
17	खगड़िया	केला (टिश्यू कलचर)	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 74883/– रुपये
18	जमुई	बेल, जामुन एवं सहजन	क्षेत्र विस्तार (बेल, जामुन एवं सहजन)	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
19	औरंगाबाद	आँवला	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
20	रोहतास	टमाटर	टमाटर बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
21	मधुबनी	पान	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये/200 वर्गमी.
22	सहरसा	बागों का जीर्णोद्धार	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
23	बेगूसराय	मिर्च	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये

24	कैमूर	जैविक सब्जी उत्पादन एवं आम	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			जैविक सब्जी उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 10000/– रुपये
25	जहानाबाद	फूल एवं सगंध पौधे	क्षेत्र विस्तार (खुले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 21600/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कटे फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कन्द वाले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 81000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (सगंधीय पौधे)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
26	अरवल	परवल	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
27	नवादा	पान	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये/200 वर्गमी.
28	लक्खीसराय	टमाटर	टमाटर बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
29	शेखपुरा	प्याज	प्याज बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
30	सारण	आलू बीज उत्पादन	आलू बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
31	सिवान	सगंधित एवं औषधीय पौधे	क्षेत्र विस्तार (खस)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (लेमन ग्रास)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
32	गोपालगंज	पपीता	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
33	सीतामढ़ी	आम एवं मसाले की	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		अन्तर्वर्त्तीय खेती	मसाले की अन्तर्वती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
34	शिवहर	आम एवं मसाले की	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		अन्तर्वर्त्तीय खेती	मसाले की अन्तर्वर्ती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
35	सुपौल	मृदा सुधार		
36	मधेपुरा	मृदा सुधार		
37	भोजपुर	अमरूद	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 19755/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
38	बक्सर	अमरूद	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 19755/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये